विराज बहू

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

दो शब्द

स्वामी-भक्ति का पाठ पढ़ा कर पुरुष ने नारी को अपने हाथ का खिलौना बना लिया। विराज भी ऐसे वातावरण में पली थी। उसने अपने पति को ही सर्वस्व मान लिया था। उसने स्वयं दुःख बर्दाश्त किया, परन्तु पति को सुखी रखने की हर तरह से चेष्टा की।

लेकिन इस सबके बदले में उसे मिला क्या !

लाञ्छना और मार।

तीन दिन की भूखी-प्यासी—बुखार से चूर विराज अपने पति नीलाम्बर के लिए बरसात की अन्धेरी रात में भीगती हुई चावल की भीख माँगने गई।

...और नीलाम्बर ने उसके सतीत्व पर सन्देह किया, उसे लाञ्छना लगाई।...

विराज का अभिमान जाग उठा। पति की गोद में सिर रख कर मरने की साध करने वाली विराज अपने सर्वस्व को छोड़ कर चल दी ...और जब उसे अपना अन्त समय दिखाई दिया तो वह पति के समीप पहुँचने को तड़प उठी।

उस सती-साध्वी को पति का सामीप्य मिला अवश्य—लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी...पति-सुख कुछ समय को पुनः प्राप्त कर बारम्बार पदधूलि माथे से लगा कर विराज अपने सारे दुःखों को भूल गई। अन्तिम क्षण पति से कहती गई, "मेरी देह शुद्ध है, निष्पाप है। अब मैं चलती हूँ जाकर राह देखती रहूँगी।"

बङ्गाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'विराज बो' का हिन्दी अनुवाद है यह विराज बहू।...

—अनुवादक

१

नीलांबर और पीतांबर नाम के दो भाई हुगली ज़िले के समग्राम में रहते थे। मुर्दे जलाने, कीर्तन करने, ढोल बजाने और गांजा पीने में नीलाम्बर जैसा आदमी उस ओर कोई नहीं था। उसके लम्बे और गोरे बदन में असाधारण शक्ति थी। परोपकार करने के लिए वह गाँव में जितना मशहूर था, अपने गँवारूपन के लिए उतना ही बदनाम था। किन्तु छोटा भाई पीताम्बर बिल्कुल दूसरी तरह का आदमी था। वह था दुबला-पतला और नाटे कद का। किसी के घर मरने की खबर सुनते ही शाम के बाद उसका शरीर कुछ अजीब-सा होने लगता था। यह अपने भाई जैसा मूर्ख नहीं था और गँवारूपन को पास नहीं फटकने देता था। तड़के ही खा-पीकर बगल में बस्ता दबाकर घर से बाहर निकल जाता और हुगली की कचहरी के पश्चिम की तरफ एक आम के पेड़ के नीचे आसन जमा देता। दरख्वास्तें लिखकर दिनभर में जो कुछ कमाया, उसे शाम होते घर आकर बक्स में बन्द कर देता। रात को घर का दरवाजा और खिड़की इत्यादि खुद ही बन्द करता और पत्नी से बार-बार उसकी जाँच कराकर ही सोता था।

चण्डीमण्डप के एक ओर बैठा हुआ नीलाम्बर आज सबेरे तमाखू पी रहा था। इसी समय उसकी अविवाहित बहिन धीरे-से आकर उसके पीछे घुटने टेककर बैठ गई और उसकी पीठ में मुँह छिपाकर रोने लगी। हुक्का नीलाम्बर ने दीवाल के सहारे रख दिया और एक हाथ अन्दाज

से बहिन के सिर पर रखकर प्यार से कहा—"सवेरे-सवेरे रो क्यों रही है बहिन ?"

हरिमती ने मुंह रगड़कर भाई की पीठ पर आंसू पोतकर कहा, "भाभी ने मेरे गाल मल दिए और कानी कहकर गाली दी है।"

नीलांबर हँसने लगे—"वाह, तुम्हें कानी कहती है ! ऐसी दो आँखें रहने पर भी जो कानी कहे, वही कानी है। परन्तु, तुम्हारा गाल क्यों मल दिया ?"

हरिमती ने रोते-रोते कहा—"ऐसे ही।"

"ऐसे ही ? चलो, पूछूं तो" कहकर हरिमती का हाथ पकड़े नीलांबर अन्दर गए और पुकारा—"विराज बहू !"

बड़ी बहू का नाम है बृजरानी। नौ साल की उम्र में ही उसकी शादी हुई थी। तब से सभी उसे विराज बहू कहते हैं। अब उसकी उम्र उन्नीस-बीस साल की होगी। सास के मरने के बाद से इस घर की मालकिन वही है। बृजरानी बहुत ही सुन्दर है। चार-पाँच साल पहले उसे एक लड़का हुआ था जो दो-चार दिन बाद ही मर गया। तब से वह नि:सन्तान है। वह रसोई बना रही थी। पति की आवाज सुनकर बाहर निकली और भाई-बहिन को एक साथ देखकर जल उठी। कहा—"मुंहझौंसी, उल्टे शिकायत करने गई थी ?"

नीलांबर ने कहा—"क्यों न करे ? तुमने झूठ-मूठ ही इसे कानी कह दिया। किंतु इसका गाल क्यों मल दिया ?"

विराज ने कहा—"इतनी बड़ी हो गई और सोकर उठी तो न मुंह धोया, न कपड़ा बदला और जाकर बछड़ा खोलकर मुंह बाए खड़ी-खड़ी देखती रही। एक बूंद भी दूध आज नहीं मिला। इसने तो मार खाने का काम किया है।"

नीलांबर ने कहा—"नहीं, दूध लाने के लिए दासी को भेज देना चाहिए। अच्छा बहिन, तुमने बछड़ा क्यों खोला ? यह तो तुम्हारा काम नहीं है !"

भाई के पीछे ही खड़ी हरिमती ने धीरे से कहा—"मैंने समझा कि दूध दुहा जा चुका है।"

"फिर कभी ऐसा समझा तो दुरुस्त कर दूँगी।" कहकर विराज चौके में जाने लगी कि नीलांबर ने हँसते हुए कहा—"इस अवस्था में एक दिन तुमने भी मा का पाला हुआ तोता उड़ा दिया था। यह समझ कर कि पिंजड़े का तोता उड़ नहीं सकता है, तुमने पिंजड़े की खिड़की खोल दी थी। याद है न ?"

वह खड़ी हो गई। हँसकर कहा, "याद है। किन्तु, तब मैं इतनी बड़ी नहीं थी, इससे छोटी थी।" और यह कहकर वह काम करने चली गई।

हरिमती ने कहा—"चलो दादा, बगीचे में चलकर देखें कि आम पक रहे हैं या नहीं।"

नीलांबर ने कहा—"चल।"

तब तक नौकर ने अन्दर आकर कहा—नरायन बाबा बैठे हैं।"

नीलांबर झेंप गया, धीरे-से कहा—"अभी से आकर बैठ गए ?"

विराज ने सुन लिया। जल्दी से बाहर आई और चिल्लाकर कहा—"बाबा से कह दे, चले जाँय।" फिर पति को लक्ष करके कहा—"सवेरे ही से यह सब पीना अगर तुमने शुरू कर दिया तो मैं सिर पटक कर प्राण दे दूँगी। क्या कर रहे हो आजकल यह सब ?" नीलांबर कुछ नहीं बोले, बहिन का हाथ पकड़ कर चुपचाप खिड़की के रास्ते बगीचे में चले गए।

बगीचे में एक तरफ किसी मृतप्राय जीव की अन्तिम सांस की तरह सरस्वती नदी की पतली धारा बहती थी। उसमें सेवार भरा पड़ा था। बीच-बीच में पानी के लिए गाँव वालों ने कुओं की तरह गड्ढे खोद रक्खे थे। उसके आस-पास सेवार से भरा हुआ छिछला पानी था। तेज धूप के कारण स्वच्छ पानी के भीतर से वहां की जमीन पर अनेकों

सीप और घोंघे मणि की तरह चमक रहे थे। बहुत दिनों पहले बरसात के पानी के तेज बहाव के कारण पास ही के समाधि-स्तूप की दीवाल से एक काला पत्थर टूटकर वहाँ जा गिरा था। रोज शाम को उस घर की बहुएँ उस मृत आत्मा के लिए एक चिराग जलाकर उसी पत्थर के एक सिरे पर रख जाती हैं। बहन का हाथ पकड़े हुए नीलांबर उसी पत्थर पर एक ओर आकर बैठ गया। नदी के दोनों किनारों पर आम के घने बाग और बँसवारियाँ थीं। वहाँ बरगद और पीपल के दो-एक पुराने पेड़ थे जिनकी शाखाएँ पानी की सतह तक लटकी हुई थीं। न मालूम कब से कितनी ही चिड़ियों ने इन डालियों पर अपना घोंसला बनाया होगा, और अपने बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया होगा। न मालूम कितने पक्षियों ने इन पेड़ों के फल खाए होंगे और गीत गाए होंगे। इन्हीं वृक्षों की छाया में दोनों भाई-बहिन कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे।

हरिमती ने सहसा अपने भाई की गोद के और नजदीक खिसक कर पूछा—"दादा, भाभी तुम्हें बोष्टम ठाकुर कहकर क्यों बुलाती हैं ?"

नीलांबर ने अपने गले की तुलसी की माला दिखलाते हुए हँसकर कहा—"मैं बोष्टम हूं, इसलिए बोष्टम ठाकुर कहती हैं।"

हरिमती को विश्वास नहीं हुआ। बोली—"वाह, तुम बोष्टम क्यों हो ? बोष्टम तो भीख माँगते हैं। अच्छा दादा, वे भीख क्यों माँगते हैं ?"

नीलाम्बर ने कहा—"उनके पास कुछ नहीं रहता है इसलिए भीख माँगते हैं।"

हरिमती ने भाई की ओर देखते हुए कहा—"बगीचा, तालाब, धान रखने के लिए घरबार—कुछ भी उनके पास नहीं रहता ?"

नीलाम्बर ने बड़े प्यार से बहिन के सिर का बाल जरा हिला दिया। कहा—"कुछ भी नहीं। बोष्टम होकर अपने पास कुछ न रखना चाहिए ?"

हरिमती ने पूछा—"तो सब मिलकर थोड़ा-थोड़ा उन्हें क्यों नहीं दे देते ?"

नीलाम्बर ने कहा—"तुम्हारे दादा ने ही क्या दिया है ?"

हरिमती ने कहा—"तो देते क्यों नहीं, दादा ? हम लोगों के पास बहुत कुछ है।"

नीलाम्बर ने हँसते हुए कहा—"तुम्हारा दादा तो कभी नहीं दे सकता है। किन्तु, तुम जब राजा की बहू बनो तो दे देना।"

छोटी होने पर भी बात सुनकर हरिमती शरमा गई। अपने भाई की छाती में मुँह छिपाकर बोली—"जाओ !"

दोनो हाथों से उसे चिपटाकर नीलाम्बर ने उसका माथा चूम लिया। मातृ-पितृहीना उस छोटी बच्ची को वह बहुत प्यार करता था। सात साल पहले जब तीन साल की थी तभी उसकी विधवा मा उसे बड़ी बहू और बेटे को सौंपकर चल बसी। नीलाम्बर ने ही पाल-पोसकर उसे बड़ा किया। आवश्यकता पड़ने पर नीलाम्बर ने गाँवभर के रोगियों की सेवा की है, मुर्दे जलाए हैं, कीर्तन किया है और गाँजा पिया है, किन्तु मा की अन्तिम आज्ञा की अवहेलना उसने कभी नहीं की। ऐसे ही कलेजे से लगाकर उसने हरिमती का लालन-पालन किया है। इसी से मा की तरह हरिमती अपने दादा की छाती में मुँह छिपाकर चुप हो रही।

तब तक पुरानी दासी ने पुकारा—"पूँटी आओ, भाभी दूध पीने के लिए बुला रही है।"

पूँटी यानी हरिमती ने सिर उठाकर विनती के स्वरों में कहा—"कहदो न दादा कि अभी मैं दूध नहीं पीऊंगी।"

"क्यों बहिन ?"

हरिमती ने कहा—"अभी मुझे बिल्कुल भूख नहीं मालूम हो रही है।"

नीलाबर ने कहा—"मैं तो मान जाऊँगा किन्तु गाल मल देने वाली नहीं मानेगी !"

[illegible] [illegible]वज दी—"पूंटी !"

[illegible] [illegible]ो झटपट खड़ा करके कहा—"चली जा [illegible], [illegible] से दूध पी आ, मैं यहीं हूं ।"

मुँह लटकाकर हरिमती धीरे-धीरे चली गई ।

उसी दिन दोपहर को पति के आगे भोजन की थाली परस कर विराज कुछ हटकर बैठ गई और बोली—"तो तुम्हीं बताओ कि भात के साथ कौन-सी चीज तुम्हें रोज-रोज मैं परसा करूँ ? यह नहीं खाऊँगा, वह नहीं खाऊँगा, वह भी नहीं खाऊँगा और आखिरकार मछली खाना भी छोड़ दिया ?"

नीलांबर ने कहा—"इतनी-सी तरकारी तो है ही ।"

विराज ने कहा—"इतनी-सी कहाँ है ? घुमा-फिराकर कभी यह और कभी वह ! बस इस साग-पात से क्या मर्दों का खाना होता है ! शहर तो यह है नहीं कि सभी चीजें मिल जाँय ! देहात है, यहाँ तो बस तालाब की मछली मिलती है और वह भी खाना तुमने छोड़ दिया ।... अरे पूंटी कहाँ गई ?...चल पङ्खा झल । ..देखो थाली में अगर, आज कुछ छूटा तो मैं सिर पटककर प्राण दे दूँगी ।"

नीलांबर हँसते हुए चुपचाप भोजन करते रहे । बोले नहीं ।

विराज झल्ला गई—"हँसते हो ! मेरे शरीर में आग लग जाती है । दिनों दिन तुम्हारी खुराक घटती जा रही है, कुछ पता है ? देखो तो जरा, गले की हड्डी दिखाई देने लगी है ।"

नीलांबर ने कहा—"मैं सब कुछ देख चुका हूँ । बस, तुम्हें वहम हो गया है ।"

विराज ने कहा—"वहम है ? हो नहीं सकता । पता है, एक दाना भी तुम कम खाओ तो मैं बता सकती हूँ ? रत्तीभर भी अगर रोग हो तो बदन पर हाथ रखते ही मैं पहचान सकती हूँ, कुछ पता है ?...पङ्खा रखकर जा तो पूँटी, चौके में अपने दादा के लिए पीने के लिए दूध लेती आ ।"

एक ओर खड़ी हरिमती भाई को पंखा झल रही था। पङ्खा रखकर वह दूध लेने चली गई।

विराज फिर कहने लगी, "देखो, नेम-धरम करने के लिए बहुत दिन बाकी हैं। उस घर की मौसी आज आई थीं। उन्होंने कहा कि इतना छोटी उमर में मछली खाना छोड़ देने से आँखों की जोत चली जाती है और देह की शक्ति कम हो जाती है। न, न, यह नहीं होगा। पता नहीं, अन्त में क्या से क्या हो जाय। मैं तुम्हें मछली खाना न छोड़ने दूँगी।"

नीलाबर हँसने लगे। बोले—"अच्छा अब मेरे बदले में तू ही खूब मछली खाया कर, सब ठीक हो जायगा।"

विराज चिढ़ गई—"भंगी-चमारों की तरह फिर वही तू-तकार?"

नीलाबर झेंप गए। लज्जित होकर बोले—"याद नहीं रहता विराज! बचपन की आदत है, छूटती नहीं। याद है कितनी बार मैंने तुम्हारा कान गरम किया है?"

विराज ने मुस्कराते हुए कहा, "याद क्यों नहीं है? मुझे छोटी पाकर तुमने क्या कम अत्याचार किया है! बाबूजी और मा की नजर बचाकर तुम मुझसे कितनी चिलमें चढ़वाया करते थे! तुम क्या कम दुष्ट हो!"

नीलाबर ठहाका मारकर हँस पड़े। कहा—"आज भी वे सब बातें मुझे याद हैं किन्तु, तभी मैं तुम्हें प्यार भी करने लगा था।"

विराज ने हँसी दबाकर कहा—"मालूम है। अब रहने दो, पूँटी आ रही है।"

हरिमती ने दूध का कटोरा भाई की थाली के पास रख दिया और फिर पंखा झलने लगी। उठकर हाथ धोकर विराज फिर पति के पास आकर बैठ गई। कहा—"पूँटी, पखा मुझे दे, जा तू खेल।"

पूँटी चली गई। विराज ने पंखा झलते-झलते कहा—"सच कहती हूँ, इतनी कम उम्र में शादी करना ठीक नहीं।"

[illegible]—"क्यों ? मैं तो कहता हूँ कि लड़कियों की [illegible] ही हो जानी चाहिए।"

[illegible] हिलाकर कहा—"नहीं। मेरी वात कुछ और है [illegible] थी। इसके अलावा, मेरे कोई शरारती या [illegible] थी। मैं दस साल की थी तभी मालकिन वन [illegible] घर भी तो मैं देखती हूँ। छोटी उम्र में ही [illegible] शुरू हो जाती है, वह वड़े होने पर भी कम [illegible] अपनी पूँटी की शादी की मैं वात ही नहीं [illegible] परसों ही राजेश्वरीतल्ला के घोपाल वावू के [illegible] लिये घटकी (शादी तय कराने वाली) आई [illegible] और लड़की जेवरों से लाद दी जाएगी। फिर भी मैं कहती हूँ कि नहीं, अभी दो साल रहने दो।"

नीलाम्बर ने विस्मित होकर सिर उठाकर कहा—"रुपए लेकर क्या तुम लड़की वेचोगी ?"

विराज ने कहा—"रुपए क्यों नहीं लूँगी ? मेरे घर में अगर कोई लड़का होता तो रुपया देकर हमें भी वहू लानी पड़ती या नहीं ? मुझे क्या तुम लोगों ने तीन-सौ रुपए देकर खरीदा नहीं था ? देवर की शादी में क्या पाँच-सौ रुपया नहीं देना पड़ा था ? न, न, इन सव वातों तुम दखल मत दो। हम लोगों की जो रीति है, वही करूँगी।"

नीलाम्बर ने और भी विस्मित होकर कहा—"यह तुमसे किसने कहा कि हमारी रीति लड़की वेचना है ? यह ठीक है कि लड़की वाले को हम देते हैं किन्तु अपनी लड़की की शादी में हम एक पैसा भी नहीं लेते। मैं पूँटी का कन्यादान दूँगा।"

पति के चेहरे का भाव देखकर विराज हँस पड़ी। कहा, "अच्छा-अच्छा, वही करना। अव खा लो, कोई वहाना करके उठ मत जाना।"

नीलाम्बर भी हँसने लगे—"मैं क्या बहाना करके उठ जाता हूँ ?"

विराज ने कहा—"हूँ, एक दिन भी नहीं। ऐसा आरोप तो तुम्हारे दुश्मन भी नहीं लगा सकेंगे ! इसके लिए मुझे कितने दिन उपवास करना पड़ा है, यह तो छोटी बहू जानती है।...ऐ, यह क्या, बस खा लिया ?"

पंखा फेंककर विराज ने दूध का कटोरा ओर से पकड़कर कहा—"मेरे सिर की कसम है तुमको, उठो मत।...जल्दी जा पूँटी, छोटी बहू से दो सन्देश तो माँग ला। न, न, गर्दन हिलाने से काम नहीं चलेगा। अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा है। मैया री, मैं कहती हूँ कि अगर उठ गए तो मैं खाना नहीं खाऊँगी। कल रात को एक बजे तक जागकर मैंने सन्देश बनाए हैं।"

दौड़ती हुई हरिमती गई और एक तश्तरी में बहुत से सन्देश लाकर नीलाम्बर के सामने रख दिए।

नीलाम्बर ने हँसते हुए कहा—"अच्छा बताओ, इतने सन्देश क्या मैं अकेला खा सकता हूँ ?"

तश्तरी की ओर देखकर विराज ने सिर झुकाकर कहा—"बातचीत करते-करते धीरे-धीरे खाओ, खा सकोगे।"

नीलाम्बर ने कहा—"तो खाना ही पड़ेगा !"

विराज ने कहा—"हाँ। अगर मछली खाना छोड़ दोगे तो ये चीजें कुछ अधिक मात्रा में खानी पड़ेंगी।"

तश्तरी करीब खींचकर नीलाम्बर ने कहा—"तुम्हारे जुल्म के कारण तो जी चाहता है कि किसी वन में भाग जाऊँ।"

पूँटी रो पड़ी—"दादा, मुझे भी...।"

विराज ने धमकाते हुए कहा—"चुप रह जलमुँही ! खाएँगे नहीं तो कैसे जिन्दा रहेंगे। ससुराल जाने पर इस शिकायत का पता चलेगा।"

नीलांबर ने पूछा—"क्यों ? मैं तो कहता हूँ कि लड़कियों की शादी बहुत कम उम्र में ही हो जानी चाहिए।"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं। मेरी बात कुछ और है क्योंकि मैं तुम्हारे हाथ पड़ी थी। इसके अलावा, मेरे कोई शरारती या दुष्ट नन्द या जिठानी नहीं थी। मैं दस साल की थी तभी मालकिन बन गई थी। किन्तु औरों का घर भी तो मैं देखती हूँ। छोटी उम्र में ही जो बक-झक और मारपीट शुरू हो जाती है, वह बड़े होने पर भी कम नहीं होती। इसीलिए तो अपनी पूँटी की शादी की मैं बात ही नहीं चलाती। नहीं तो अभी परसों ही राजेश्वरीतल्ला के घोषाल बाबू के घर से पूँटी की शादी के लिये घटकी (शादी तय कराने वाली) आई थी। एक हजार नकद देंगे और लड़की जेवरों से लाद दी जाएगी। फिर भी मैं कहती हूँ कि नहीं, अभी दो साल रहने दो।"

नीलाम्बर ने विस्मित होकर सिर उठाकर कहा—"रुपए लेकर क्या तुम लड़की बेचोगी ?"

विराज ने कहा—"रुपए क्यों नहीं लूँगी ? मेरे घर में अगर लड़का होता तो रुपया देकर हमें भी बहू लानी पड़ती या नहीं ? थ्यु। तुम लोगों ने तीन-सौ रुपए देकर खरीदा नहीं था ? देवर की ...दी में क्या पाँच-सौ रुपया नहीं देना पड़ा था ? न, न, इन सब बातों में तुम दखल मत दो। हम लोगों की जो रीति है, वही करूँगी।"

नीलाम्बर ने और भी विस्मित होकर कहा—"यह तुमसे किसने कहा कि हमारी रीति लड़की बेचना है ? यह ठीक है कि लड़की वाले को हम देते हैं किन्तु अपनी लड़की की शादी में हम एक पैसा भी नहीं लेते। मैं पूँटी का कन्यादान दूँगा।"

पति के चेहरे का भाव देखकर विराज हँस पड़ी। कहा, "अच्छा-अच्छा, वही करना। अब खा लो, कोई बहाना करके उठ मत जाना।"

नीलाम्बर भी हँसने लगे–"मैं क्या बहाना करके उठ जाता हूँ ?"

विराज ने कहा—"उहूँ, एक दिन भी नहीं। ऐसा आरोप तो तुम्हारे दुश्मन भी नहीं लगा सकेंगे ! इसके लिए मुझे कितने दिन उपवास करना पड़ा है, यह तो छोटी बहू जानती है।...अरे, यह क्या, बस खा लिया ?"

पंखा फेंककर विराज ने दूध का कटोरा जोर से पकड़कर कहा–"मेरे सिर की कसम है तुमको, उठो मत।...जल्दी जा पूँटी, छोटी बहू से दो सन्देश तो माँग ला। न, न, गर्दन हिलाने से काम नहीं चलेगा। अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा है। मैया री, मैं कहती हूँ कि अगर उठ गए तो मैं खाना नहीं खाऊँगी। कल रात को एक बजे तक जागकर मैंने सन्देश बनाए हैं।"

दौड़ती हुई हरिमती गई और एक तश्तरी में बहुत से सन्देश लाकर नीलाम्बर के सामने रख दिए।

नीलाम्बर ने हँसते हुए कहा—"अच्छा बताओ, इतने सन्देश क्या मैं अकेला खा सकता हूँ ?"

तश्तरी की ओर देखकर विराज ने सिर झुकाकर कहा—"बातचीत करते-करते धीरे-धीरे खाओ, खा सकोगे।"

नीलाम्बर ने कहा–"तो खाना ही पड़ेगा !"

विराज ने कहा—"हाँ। अगर मछली खाना छोड़ दोगे तो ये चीजें कुछ अधिक मात्रा में खानी पड़ेंगी।"

तश्तरी करीब खींचकर नीलाम्बर ने कहा–"तुम्हारे जुल्म के कारण तो जी चाहता है कि किसी वन में भाग जाऊँ।"

पूँटी रो पड़ी–"दादा, मुझे भी...।"

विराज ने धमकाते हुए कहा—"चुप रह जलमुँही ! खाएँगे नहीं तो कैसे जिन्दा रहेंगे। ससुराल जाने पर इस शिकायत का पता चलेगा।"

२

[illegible]।

[illegible] सवेरे नीलाम्वर का वुखार टूटा। [illegible] धुले हुए कपड़े पहनाकर फर्श पर विस्तर [illegible]। [illegible]ा-पड़ा वह खिड़की के पास एक नारियल [illegible]। [illegible] ही हरिमती धीरे-धीरे हवा कर रही थी। [illegible] भीगे वाल पीठ पर फैलाए और एक रेशमी साड़ी पहने हुए अन्दर आई। सारा कमरा जैसे चमक उठा। नीलाम्वर ने उसकी ओर देखकर कहा—"यह क्या ?"

विराज ने कहा—"पंचानन्द वावा की पूजा करनी थी, जरा पूजा का सामान भिजवादूँ।" यह कहकर पति के सिरहाने वैठ कर उसने उसके माथे का स्पर्श करते हुए कहा—"न, वुखार नहीं है। पता नहीं, शीतला मइया के मन में इस साल क्या है ! घर-घर क्या हाल है ! आज सवेरे ही सुना कि यहाँ के मोती मोडल के लड़के की सारी [illegible]ह में माता की कृपा हुई है। शरीर में तिलभर भी जगह वाकी नहीं रह गई।"

नीलाम्वर ने उदास होकर पूछा—"मोती के किस लड़के को शीतला निकली है ?"

विराज ने कहा—"वड़े लड़के को। शीतला माता, गाँव को शीतल करो मां ! ओह, उसका यही लड़का तो कमाता-धमाता है ! पिछले शनिवार की रात के पिछले पहर में अचानक मेरी नींद टूट गई। तुम्हारे शरीर पर हाथ रखा तो लगा जैसे वदन जल रहा है। मारे डर के छाती का खून जम गया। उठकर वड़ी देर तक रोती रही। इसके वाद मा शीतला से मनौती की कि जव ये अच्छे हो

जाएं तो तुम्हें पूजा चढ़ाऊँगी और तभी अन्न-जल स्पर्श करूंगी और नहीं तो जान दे दूंगी।" कहते-कहते विराज की आंखें छलछला आईं और दो बूंद आंसू गिर पड़े।

नीलांबर ने चकित होकर कहा—"तुम उपवास कर रही हो?"

पूंटी ने कहा—"हां दादा, भाभी कुछ नहीं खाती। बस, शाम को मुट्ठीभर कच्चा चावल चबाकर एक लोटा पानी पिया था। किसी का कहा नहीं मानती।"

नीलांबर ने बहुत असन्तुष्ट होकर कहा—"यह क्या तुम्हारा पागलपन नहीं है?"

साड़ी के छोर से अपने आंसू पोंछते हुए विराज ने कहा—"पागलपन? असली पागलपन है! तुम अगर नारी होते तो जानते कि पति क्या चीज है? तब तुम जानते कि ऐसे दिनों में बुखार आने पर छाती के भीतर क्या होता है!" कहकर वह जा ही रही थी कि रुककर फिर बोली—"महरी पूजा करने जा रही है पूंटी अगर जाना चाहो तो जाओ, जल्दी नहा लो।"

पूंटी उठ बैठी। प्रसन्नता से बोली—"जाऊँगी भाभी!"

"तो देर मत कर। जा, देवता से अपने दादा के लिए ठीक से वरदान मांगना।"

पूंटी जल्दी से चली गई। नीलांबर ने हँसते हुए पूछा—"तुम से ज्यादा ठीक से वह मांग सकेगी?"

विराज ने हँसकर गर्दन हिलाते हुए कहा—"यह मत कहो। भाई हो चाहे मां-बाप, परन्तु स्त्रियों के लिए पति से बढ़ कर और कोई नहीं है। भाई या मां-बाप के न रहने से कुछ दुःख अवश्य होता है किन्तु पति के न रहने पर तो सब कुछ चला जाता है। मैं ही आज पांच दिनों से बिना खाए-पिए हूं किन्तु चिन्ता और दुर्भावना के कारण कभी भी इसकी याद नहीं आई कि मैं उपवास कर रही हूं। मगर, बुलाओ तो जरा अपनी बहिन को, देखूं कैसे···।"

नीलांबर ने जल्दी से बाधा देते हुए कहा—"फिर !"

विराज ने कहा—"तो कहते क्यों हो ? पागलपन या जो कुछ मैंने किया है यह मैं ही जानती हूँ, या देवता जानते हैं जिन्होंने मेरी यह प्रार्थना रखी है। यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो एक दिन भी मैं जिन्दा नहीं रहती। माँग का सिन्दूर धुलने से पहले ही मैं माथा फोड़ डालती। शुभ-यात्रा में कोई मेरा मुँह नहीं देखता, शुभ-कर्म में कोई मुझे बुलाकर कुछ पूछता नहीं। लोगों के सामने इन दोनों खाली हाथों को निकाल नहीं सकूँगी, लज्जा के कारण माथे से आँचल नहीं हटा सकूँगी, छिः-छिः इस तरह की जिन्दगी भी क्या कोई जिन्दगी है। जिस जमाने में लोग जलाकर मारते थे, वही ठीक था। तभी पुरुष स्त्रियों के दुःख-तकलीफ को जानते-समझते थे, अब नहीं समझते।"

तीन-चार दिन बाद अच्छा होकर नीलांबर बाहर चंडी-मंडप में बैठे थे। तब तक मोती मोडल आकर रोने लगा—"दादा ठाकुर! चल कर एक बार अगर तुमने नहीं देखा तो मेरा छिपन्त अब नहीं बचेगा। एक बार अगर पैरों की धूलि दे दो, देवता, शायद वह उठकर खड़ा हो जाय।" इसके आगे वह कुछ कह नहीं सका, घबड़ाकर रोने लगा।

नीलांबर ने पूछा—"बदन में क्या बहुत दाने निकल आए हैं ?"

मोती ने आँसू पोछते हुए कहा—"क्या बताऊँ! माता जैसे बिल्कुल मर गई है। नीची जाति मे पैदा हुआ हूँ बाबा, कुछ भी तो नहीं जानता कि क्या किया जाता है! जरा चले चलिए।" कह कर उसने दोनों पैर पकड़ लिए।

नीलांबर ने धीरे-से पाँव छुड़ाकर नरम स्वर से कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं है, तू चल मैं बाद में आऊँगा।"

उसके रोने-गिड़गिड़ाने के कारण नीलांबर अपनी अस्वस्थता की बात नहीं कह सका। हर तरह के रोगियों की सेवा करके इस मामले में वह इतना दक्ष हो गया था कि पास पड़ोस के गाँवों में भी अगर किसी को कोई कठिन रोग हो जाता तो उसे एक बार दिखलाकर, उसके मुँह से सान्त्वना और आश्वासन की बात एक बार सुने बिना रोगी के आत्मीय स्वजनों को किसी तरह चैन नहीं मिलता था। नीलांबर भी यह जानता था। उसे मालूम था कि वहाँ के अनपढ़ और गँवार लोग डाक्टर-वैद्य की दवा की अपेक्षा उसके पाँवों की धूलि और मन्त्र पढ़कर हाथ मे दिए गए पानी में कहीं अधिक श्रद्धा रखते हैं, इसीलिए वह कभी किसी को निराश नहीं करता था। एक बार फिर रोते हुए उसने पाँवों की धूलि देने की प्रार्थना करके मोती मोडल आँखें पोंछता हुआ चला गया। नीलांबर बेचैन होकर सोचने लगा। अब भी उसे कुछ कमजोरी थी। सोचने लगा कि बाहर कैसे निकले। विराज से वह बहुत डरता था। कैसे उससे वह यह बात कहे।

ठीक इसी समय अन्दर के आँगन से हरिमती ने जोर से पुकारा—"दादा, अन्दर सोने के लिए भाभी कह रही हैं।"

नीलांबर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद हरिमती ने पास आकर कहा—"सुनाई नहीं पड़ा, दादा ?"

नीलांबर ने गर्दन हिलाकर कहा—"नहीं।"

हरिमती ने कहा—"जब से थोड़ा-सा खाया तब से यहीं बैठे हो ! भाभी कहती हैं, बैठने की जरूरत नहीं, चलकर जरा सो लो।"

नीलांबर ने धीरे-से पूछा—"पुँटी, तेरी भाभी क्या कर रही है ?"

हरिमती ने कहा—"तुरन्त ही भोजन करने बैठी हैं।"

नीलांबर ने दुलराते हुए कहा—"मेरी अच्छी-सी बहिन, एक काम करेगी ?"

हरिमती ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

नीलांबर ने और भी कोमल स्वर से कहा—"जाकर चुपके से मेरी चादर और छाता उठा ला।"

"चादर और छाता ?"

नीलांबर ने कहा—"हाँ।"

हरिमती ने आँखें फैलाकर कहा—"न बाबा ! ठीक इधर ही मुँह करके भाभी खाने बैठी हैं।"

नीलांबर ने अन्तिम चेष्टा करते हुए कहा—"तो नहीं ला सकेगी ?"

हरिमती ने मुँह फैलाकर दो-तीन बार सिर हिलाकर कहा—"न दादा, भाभी देख लेंगी, तुम चलकर लेटो।"

उस वक्त दिन के दो बज रहे थे। तेज धूप के कारण बिना छाते के बाहर निकलने का साहस नहीं हुआ। इसलिए हताश होकर बहिन का हाथ पकड़े अन्दर जाकर लेट रहा। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करते हुए हरिमती सो गई। नीलांबर चुपचाप यही सोचता रहा कि कैसे यह बात कहूँ कि विराज का मन पसीज जाय !

दिन करीब-करीब ढल चुका था। विराज अपने घर के चिकने और ठंडे सीमेंट के फर्श पर पड़ी हुई अपनी छाती के नीचे एक तकिया दबाए थी और तन्मय होकर अपने मामा-मामी को वह चार पेज का लम्बा पत्र लिख रही थी कि इस साल कैसे उसके गाँव में शीतला माता का प्रकोप हुआ और कैसे केवल उसी का घर मौत से बच सका है और कैसे उसके माँग का सिंदूर और हाथ की चूड़ियाँ बच सकीं। यह कहानी लिखने से खत्म नहीं होती थी। तभी लेटे-लेटे सहसा नीलाम्बर ने पुकार कर कहा—"मेरी एक बात मानोगी, विराज ?"

दवात में कलम रखकर विराज ने सिर उठाकर पूछा—"कहो, क्या बात है ?"

विराज ने फिर कहा—"मानने लायक होगी तो मानूँगी ही। कहो, क्या बात है ?"

नीलाम्बर ने क्षणभर सोचकर कहा—"कहने से कोई लाभ नहीं, विराज, तुम मेरी बात नहीं मानोगी।"

विराज ने फिर कुछ नहीं कहा। कलम लेकर चिट्ठी समाप्त करने के लिए फिर झुक गई, किन्तु लिखने में तबियत नहीं लगी। अन्दर-ही-अन्दर उत्सुकता बढ़ती गई, उठकर बैठ गई और कहा—"अच्छा, बतलाओ मैं मानूँगी।"

नीलाम्बर ने मुस्कराते हुए और कुछ हिचकते हुए कहा—"आज दोपहर को मोती आया था और मेरे पाँव पकड़ कर रोने लगा। उसका विश्वास है कि उसके घर में जब तक मेरी पदधूलि नहीं पड़ेगी तब तक उसका छोमन्त बच नहीं सकेगा। एक बार मुझे जाना ही पड़ेगा।"

विराज उसका मुँह देखती रह गई। थोड़ी देर बाद बोली—"यह रोगी शरीर लेकर जाओगे ?"

"क्या करूँ विराज, वायदा कर चुका हूँ। एक बार मुझे जाना ही होगा।"

"[illegible] ?"

नीलाम्बर चुप हो रहे।

विराज ने रुखाई से कहा—"तुम क्या समझते हो कि तुम्हारी जिन्दगी बस तुम्हारे ही लिए है और किसी को बोलने का हक उसमें नहीं है ? तुम्हारी जो मर्जी होगी, वही करोगे ?"

बात आगे बढ़ाने के लिए नीलाम्बर ने हँसने की कोशिश की परन्तु पत्नी का रुख देखकर हँस न सका। किसी तरह कहा—"उसका रोना देख कर...।"

विराज ने बात काट कर कहा—"ठीक ही तो है ! उसका रोना तो तुमने देखा किन्तु मेरा रोना देखने वाला इस संसार में कोई नहीं है ?" कह कर उसने उस चार पेज की लम्बी चिट्ठी को टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा–"उफ, ये मर्द भी कैसे होते हैं ! बिना खाए-पिए चार दिन और चार रातें गुजार दीं, उसी का यह बदला मिल रहा है ? घर-घर बुखार और शीतला फैली है और यह कमजोर और रुग्ण शरीर लेकर रोगी देखेंगे और छुएँगे ! अच्छा जाओ, मेरे भी भगवान हैं।" कहकर फिर छाती के नीचे तकिया दबाकर वह पड़ रही।

नीलाम्बर के होठों पर एक मन्द दबी-सी मुस्कान आ गई। उसने धीरे से कहा—"तुम स्त्रियों का क्या ठिकाना जो हर बात में भगवान की ही दुहाई दिया करती हैं।"

विराज जल्दी से उठ बैठी और गुस्से में बोली—"नहीं, भगवान पर तो केवल तुम्हें ही विश्वास है, हम लोगों को नहीं। हम कीर्त्तन नहीं करतीं, तुलसी की माला नहीं पहनतीं और मुर्दे जलाने नहीं जातीं, इसलिए भगवान हम लोगों के नहीं हैं, बस, तुम्हीं लोगों के हैं ?"

विराज का गुस्सा देखकर नीलाम्बर को हँसी आ गई। कहा—"गुस्सा मत करो विराज, सचमुच ऐसी ही बात है। केवल तुम्हीं ऐसी नहीं हो, सभी हैं। भगवान पर विश्वास रखने के लिए जितनी शक्ति

चाहिए, उतनी शक्ति स्त्रियों में नहीं होती। फिर, इसमें तुम्हारी गलती क्या है?"

विराज ने झल्लाकर कहा—"नहीं, गलती नहीं, स्त्रियों का यह गुण है। किन्तु, अगर शरीर को शक्ति की ही इतनी आवश्यकता है शेर और भालू के शरीर में तो कहीं ज्यादा शक्ति होती है। ०— लाख कोशिश करो पर यह रोगी शरीर लेकर मैं — कह सकता हूँ। निकलने दे सकती।" —गी तो हमारा क्या

नीलाम्बर चुपचाप लेट गया। वि— पड़ी रहने के बाद यह कह कर कि —, जायदाद गिरवी रखने और महा- करीब एक घण्टे बाद विराज— बर्दाश्त करने से कहीं यह ज्यादा अच्छा पलंग पर नहीं हैं, तुरन्त — ता है नहीं, जिसके लिए चिन्ता की जाय। गए? जरा बाहर — किसी तरह गुजारा हो ही जायगा, और अगर न

पूँटी — बीष्म ठाकुर हो ही।"

कहा—"कहीं — दिनों की बात है। रात के करीब दस बज रहे थे।

"लेटा हुआ नीलांबर आँखें मूँदे हुए, हुक्के की नली मुँह में चौसर — तम्बाकू पी रहा था। घर का काम-धाम खत्म करके विराज सोने — फर्श पर बैठी हुई अपने लिए एक बहुत बड़ा-सा पान लगा रही — एकाएक कह पड़ी—"क्योंजी, शास्त्र की सभी बातें सच महीने हैं?"

चूल — हुक्के की नली एक ओर रखकर नीलांबर ने अपनी पत्नी की ओर मए — तित होकर कहा—"सच नहीं तो क्या झूठी बात है।" विराज ने — हा—"मैं झूठी नहीं कहती, परन्तु आजकल भी क्या वे पहले की तरह — ही सच निकलती हैं?"

नीलांबर ने क्षणभर सोचकर कहा—"मैं तो यही जानता हूँ कि सत्य-हमेशा सत्य ही होता है। सत्य पहले भी सत्य था, अब भी — है और आगे भी सत्य ही रहेगा।"

विराज ने कहा—"सावित्री और सत्यवान की क—

लो। सावित्री ने पति का प्राण यमराज के हाथ से लौटा लिया, यह क्या सत्य हो सकता है ?"

नीलांबर ने कहा—"क्यों नहीं ? जो सावित्री की तरह सती है, वह पति का प्राण अवश्य ही लौटा सकती है।"

विराज ने बेधड़क कह दिया—"तब तो मैं भी लौटा सकती हूँ।"

नीलांबर ने हँसते हुए कहा—"तुम भी उन्हीं की तरह सती हो क्या ? वे देवता ठहरे।"

पान का डिब्बा एक ओर खिसका कर विराज ने कहा—"होने दो, सतीत्व में मैं उनसे किस बात में कम हूँ ? संसार में मेरी जैसी सती और भी हो सकती हैं, किन्तु यह मैं नहीं मानती कि मन और ज्ञान से हमसे बढ़कर सती और कोई है। चाहे सावित्री हो या सीता, परन्तु मैं उनसे किसी माने में कम नहीं हूँ।"

नीलांबर ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप वह पत्नी के मुँह की ओर देखता रहा। सामने चिराग रखकर विराज पान लगाने बैठी थी। रोशनी में विराज की आँखों में एक अद्भुत पवित्र ज्योति-सी फूटती नीलांबर को साफ दिखाई पड़ी।

नीलांबर ने डरते-डरते कह ही दिया—"तो लगता है, तुम भी सकोगी।"

विराज ने उठकर पति के चरणों में माथा रखकर कहा—"तुम यही आशीर्वाद दो मुझे कि होश संभालने के बाद से इन युगल-चरणों के अतिरिक्त, अगर मैंने और कुछ नहीं जाना हो और अगर मैं सचमुच ही सती हूँ, तो दुर्दिन में उन्हीं की तरह मैं भी तुम्हें लौटा ला सकूँ इन्हीं चरणों में सिर रखकर मर सकूँ—माथे में सिंदूर और हाथों में चूड़ियाँ पहिने हुए ही चिता पर सो सकूँ।"

नीलांबर घबराकर उठ बैठे। कहा—"आज तुम्हें क्या हो गया है, विराज ?"

विराज की दोनों आँखें छलछला उठीं। उसके होठों पर एक

अत्यन्त मधुर मुस्कान झलक गई। उसने कहा—"यह फिर कभी सुनना, आज नहीं। आज तो बस, मुझे यही आशीर्वाद दो कि मरते समय तुम्हारे इन चरणों की धूलि मिल सके और तुम्हारी गोद में सिर रखकर तुम्हारा यह मुँह देखती हुई मर सकूँ।" और कहते-कहते उसका गला रुँध आया।

नीलाम्बर ने डरते हुए उसे खींचकर अपनी छाती से चिपटा लिया। कहा—"आज क्या हो गया है तुम्हें ? किसी ने कुछ कहा है ?"

पति की छाती में मुँह छिपाकर विराज रोने लगी, कोई जवाब नहीं दिया।

नीलांबर ने कहा—"ऐसा तो तुम कभी नहीं कहती थीं विराज, आज क्या हो गया है तुम्हे ?"

विराज ने अपनी आँखें पोंछलीं। सिर उठाकर उसने केवल यही कहा—"फिर कभी पूछना।"

नीलांबर ने फिर कुछ नहीं पूछा। उसी तरह बैठे-बैठे उसके बालों में उङ्गली डालकर चुपचाप उसे सांत्वना देने लगा। बहिन की शादी में कुछ अधिक खर्च कर डालने के कारण वह उलझन में फँस गया था और गृहस्थी का काम अब पहले की तरह चल नहीं पाता था। दो साल के अकाल पड़ने के कारण कोठी मे न तो धान रह गया था। और न तालाब मे मछली और न पानी। कदली-बगान सूखता जा रहा था। बगीचे के कच्चे नीबू सूखकर झड़े जा रहे थे, और ऊपर से महाजनों ने तकाजा करना शुरू कर दिया था। उधर लड़के की पढ़ाई के खर्चे के लिए पूँटी के ससुर ने भी मीठी-कड़ुई चिट्ठी लिखना शुरू कर दिया था। विराज को यह सब मालुम नहीं। बहुत-सा कटु समाचार नीलांबर ने बड़ी मुश्किल से छिपा रखा था। इस समय घबड़ाकर वह सोचने लगा—मालूम होता है, किसी ने ये सब बातें विराज से कह दी है।

सहसा मुँह ऊपर करके विराज मुस्कराई और पूछा—"अच्छा, एक बात पूछूँ, सच बताओगे ?"

नीलांबर ने मन-ही-मन डरते हुए कहा—"क्या !"

विराज की सबसे बड़ी सुन्दरता थी उसके मुँह की मनोहारिणी हँसी। एक बार फिर हँसकर उसने पूँछा—"अच्छा, मैं काली-कलूटी तो नहीं हूँ ?"

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—"न।"

विराज ने पूछा—"अगर मैं काली-कलूटी होती, तो भी तुम मुझे इतना प्यार करते ?"

यह अजीब सवाल सुनकर वह कुछ विस्मित तो हुआ लेकिन छाती पर से एक भारी बोझ-सा उतर गया।

उसने हँसते हुए कहा—"छुटपन से ही मैं एक परम सुन्दरी को प्यार करता आरहा हूँ। अब कैसे बतलाऊँ कि वह अगर काली-कलूटी होती तो मैं क्या करता ?"

विराज ने पति की गलबहियाँ देकर तथा अपना मुँह और भी नजदीक करके कहा—"मैं बताऊँ, क्या करते ? तब भी मुझे ऐसे ही प्यार करते।"

तो भी नीलांबर चुपचाप उसके मुँह की ओर देखता रहा।

विराज ने कहा—"क्यों, तुम यही सोच रहे हो न कि मैं कैसे जान गई ?"

अब की बार नीलांबर ने धीरे-धीरे कहा—"सोच रहा हूँ कि तुम कैसे जान गई !"

विराज ने पति का गला छोड़ दिया और उसकी छाती पर सिर रखकर लेट गई। फिर ऊपर को देखती हुई धीरे-धीरे बोली—"मेरा मन मुझे बतला देता है। जितना मैं तुम्हें जानती हूँ, उतना तुम खुद भी अपने को नहीं जानते और इसलिए कहती हूँ कि तब भी तुम मुझे ऐसे ही प्यार करते। तुम अन्याय या पाप नहीं कर सकते। अपनी पत्नी को प्यार न करना अन्याय है—पाप है। इसी से मैं जानती हूँ

'कि अगर मैं कानी-कुबड़ी होती तो भी तुम इतना ही प्यार करते, दुलार करते।"

नीलाम्बर ने कुछ जवाब नहीं दिया।

क्षणभर स्थिर रहकर विराज ने एकाएक उसी तरफ लेटे-लेटे हाथ बढ़ाकर अनुमान से पति के आँखों के कोनों को स्पर्श करके कहा—"आँखों में ये आँसू क्यों ?"

नीलाम्बर ने प्रेम से उसका हाथ हटाकर पूछा—"कैसे जाना ?"

विराज ने कहा—"भूल क्यों जाते हो कि नौ साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी ? भूल क्यों जाते हो कि तुम्हें पाने के बाद मैंने तुम्हें पाया है ? अपने शरीर पर हाथ रखकर भी क्या तुम्हें नहीं मालूम होता कि मैं भी उसमें मिल गई हूँ ?"

नीलाम्बर कुछ बोला नहीं। उसकी बन्द आँखों के कोनों से बूँद-बूँद करके आँसू टपकने लगे।

विराज उठ गई और अपने आँचल से बड़े प्रेम और सावधानी के साथ पति के आँसू पोंछती हुई गंभीर स्वर में बोली—"तुम चिन्ता न करो, मरते समय सासजी पूँटी को तुम्हें सौंप गई हैं। तुमने जिस बात में पूँटी की भलाई समझी, वही किया। मां हमें स्वर्ग में आशीर्वाद देंगी। तुम अच्छे और स्वस्थ हो जाओ और कर्ज से छुटकारा पा जाओ, भले ही तुम्हारा सबकुछ चला जाय।"

आसू पोंछते हुए नीलाम्बर ने रुंधे कण्ठ से कहा—तुम्हें नहीं मालूम विराज, मैंने क्या किया है। मैंने तुम्हारा...।"

विराज ने पति के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए कहा—"मुझे सब मालूम है। चाहे और कुछ जानूँ या न जानूँ परन्तु इतना निश्चित रूप से जानती हूँ कि तुम्हें बीमार नहीं पड़ने दूँगी। न, यह नहीं होगा। जिसका जो बाकी है, वह देकर निश्चिन्त हो जाओ। इसके —[illegible] ईश्वर है और चरणों तले मैं।"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर नीलाम्बर चुप रह

४

छै महीने बीत गए। पूँटी की शादी के पहले ही छोटा भाई जमीन-जायदाद लेकर अलग हो गया था। नीलांबर को उसी समय अपना कुछ भाग बन्धक रखकर ऋण लेना पड़ा था। पीताम्बर ने एक पैसे की भी मदद नहीं की। जो कुछ बच गया, उसे ही बारी-बारी से गिरवीं रखकर नीलाम्बर बहनोई की पढ़ाई और गृहस्थी का खर्च चलाता रहा। इस तरह कर्ज का बोझ दिनों-दिन बढ़ता गया किन्तु मोह के कारण अपने बाप-दादों की जमीन वह किसी तरह बेच नहीं सका।

मोहल्ला के भोलानाथ मुकर्जी आज तीसरे पहर बाकी सूद के लिए उसे कुछ बुरा-भला सुना गए थे। ओट में खड़ी विराज ने सबकुछ सुन लिया। नीलांबर जैसे ही अन्दर आया, रसोईघर से निकलकर चुपचाप वह उसके सामने आकर खड़ी होगई। उसका चेहरा देखते ही नीलांबर घबरा गया। अपमान और क्षोभ से विराज जल-सी रही थी। किन्तु ` को संयत कर उङ्गली से पलङ्ग की ओर संकेत करते हुए अत्यन्त और गम्भीर स्वर से बोली—"बैठो यहाँ।"

नीलांबर पलंग पर बैठ गया। विराज भी उसके पैरों के पास बैठ गई और कहा—"ऋण चुकाकर आज मुझे उऋण कर दो वरना तुम्हारे पाँव छूकर आज मैं क़सम खालूँगी।"

नीलांबर जान गया कि विराज सबकुछ सुन चुकी है। इसी से बहुत डरते हुए झुककर तुरन्त उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया और खींचकर उसे अपने पास बिठाते हुए नम्रता से कहा—"छिः विराज, मामूली बात में तुम इतनी नाराज हो जाती हो!"

अपने मुँह पर से पति का हाथ उठाकर विराज ने कहा—"इस

पर भी आदमी अगर नाराज नहीं होता है तो कब होगा है—जरा सुनूं।"

नीलाम्बर सहसा कोई उत्तर नहीं दे सका, चुपचाप बैठा रहा।

विराज ने कहा—"चुप क्यों हो गए ?"

नीलांबर ने धीरे से कहा —"क्या जवाब दूं, विराज ! किंतु...।"

विराज ने बात काटकर कहा—"किन्तु-परन्तु से काम नहीं चलने का ! यह कभी मत सोचना कि मेरे ही घर में आकर लोग तुम्हारा अपमान कर जाएंगे और मैं चुपचाप सुन लूंगी। आज ही इसका कोई इन्तजाम करो, नहीं तो मैं जान दे दूंगी।"

नीलांबर ने डरते-डरते कहा—"एक ही दिन में क्या इन्तजाम करूं, विराज ?"

विराज ने कहा—"दो दिन बाद ही क्या इन्तजाम करोगे, जरा सुनूं ?"

नीलांबर चुप हो गया।

विराज ने कहा—"न पूरी होने वाली उम्मीद से अपने को बहलाने की कोशिश करके मेरा सर्वनाश मत करो। जितने दिन बीतेंगे, कर्ज का बोझ बढ़ता ही जायगा। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, भीख मांगती हूं तुम से, अभी इसी वक्त इसका कोई इन्तजाम करो, किसी तरह गला छुड़ाओ।"

कहते-कहते उसका गला भर आया। भोला मुकर्जी की बातें उसकी छाती में चुभ रही थीं।

अपने हाथ से उसके आंसू पोंछते हुए नीलांबर ने धीरे-से कहा—"इस तरह घबराने से क्या होगा, विराज ! एक साल भी अगर पूरी फसल हो गई तो मैं अपनी सारी जायदाद छुड़ा सकूंगा किन्तु सोचो तो सही कि बेच डालने से तो ऐसा न होगा !"

विराज ने भर्राई आवाज में कहा—"सोच चुकी ... एक ... अगली साल अच्छी फसल होने का कोई ठिकाना न...

का कड़ा तकाजा है। सब कुछ मैं बर्दास्त कर सकती हूँ परन्तु तुम्हारा अपमान नहीं बर्दास्त कर सकती।"

नीलांबर भी यह जानता था, इसलिए कोई जवाब न दे सका।

विराज कहने लगी—"मुझे क्या, बस एक ही दुख है। रात-दिन चिन्ता करने के कारण तुम मेरी आंखों के सामने ही सूखते-ही-सूखते जा रहे हो। सोने-सी यह देह काली पड़ती जा रही है। अच्छा, मेरे शरीर पर हाथ रखकर तुम्हीं कहो, क्या यह सब बर्दास्त करने की शक्ति मुझ में है? जोगीन की पढ़ाई का खर्च कब तक देना पड़ेगा?"

नीलांबर ने कहा—"केवल साल भर तक और इसके बाद वह डाक्टर हो जायगा।"

क्षणभर चुप रह कर विराज ने कहा—पूंटी को पाल-पोसकर हमने बड़ा किया है कि वह राजरानी बन सके। अगर जानती होती कि उसके कारण इतना दुःख उठाना पड़ेगा तो बचपन में ही उसे नदी में बहा देती, अपने सिर पर गाज नहीं गिरने देती। हे ईश्वर! वे बड़े आदमी हैं, उन्हें कोई तकलीफ नहीं, न किसी चीज की कमी है, फिर भी जोंक की तरह हमारे कलेजे का खून चूसते हुए उन्हें तनिक भी दया नहीं आती—रहम नहीं आता?"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर वह फिर कहने लगी—"चारों तरफ अकाल की छाया है! अभी से कितनों को बस एक ही बेला खाना मिल रहा है और कितनों को बिल्कुल फाकेकशी करनी पड़ रही है। ऐसे दुर्दिनों में दूसरे के लड़के को पढ़ा-लिखाकर हम क्यों आदमी बनाएँ। पूंटी के श्वसुर को किसी चीज की कमी नहीं, वे बड़े आदमी हैं। अगर वे अपने लड़के को नहीं पढ़ा सकते तो हम क्यों पढ़ायें? जो हुआ सो हुआ, अब इसके लिए तुम कर्ज नहीं ले सकोगे?"

बड़ी तकलीफ से होठों पर एक उदास हँसी लाते हुए नीलाम्बर ने कहा—"सब समझता हूँ, विराज! किन्तु शालिग्राम के सामने जो कसम खाई है, उसका क्या होगा?"

विराज तुरन्त कह उठी—"कुछ भी नहीं होगा, शालिग्राम अगर सच्चे देवता हैं, तो वे हमारा कष्ट अवश्य समझेंगे। ऐसा करने से अगर तुम पर कोई पाप पड़ेगा तो तुम्हारी अर्द्धांगिनी हूँ, तुम्हारे सारे पापों को सिर-आँखों पर लेकर मैं जन्म-जन्मांतर तक नरक भोग लूँगी। तुम्हें डरने की जरूरत नहीं। अब तुम कर्ज मत लो।"

विराज से यह बात छिपी नहीं थी कि उसके धर्मात्मा पति बहुत ही दुखी थे। किन्तु, इससे अधिक अब वह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। वास्तव में स्वामी ही उसके सर्वस्व थे। रात-दिन चिन्ता करने के कारण उसके स्वामी का चेहरा सूखकर उदास हो गया था और उसे देखकर उसकी छाती टूक-टूक हो जाती थी। अब तक वह अपने आप को सम्भाले थी, परन्तु अब नहीं सम्भाल सकी। जल्दी से पति की छाती में मुँह छिपाकर फूट-फूट कर रोने लगी।

नीलाम्बर ने अपना दाहिना हाथ विराज के सिर पर रख दिया और चुपचाप प्रस्तर मूर्ति-सा बैठा रहा। बड़ी देर तक रोती रहने के कारण विराज की पीड़ा कम होने लगी। पति की छाती में मुँह छिपाए ही उसने रोते-रोते कहा—"बचपन से लेकर अब तक मैंने कभी भी तुम्हारा चेहरा उदास या लटका हुआ नहीं देखा। किन्तु अब तुम्हारा चेहरा देखते ही मेरी चिता-सी जलने लगती है। अपनी चिंता तुम्हें नहीं है तो मेरी ही ओर एक बार देखो। अन्त में क्या मुझे सचमुच ही राह की भिखारिन बना दोगे? और यह क्या तुम बर्दाश्त कर सकोगे?"

तो भी नीलाम्बर कुछ नहीं कह सका। अनमने भाव से पत्नी का सिर सहलाने लगा और उसके बालों में उङ्गलियाँ चलाने लगा। तभी दरवाजे के बाहर से ही उसकी पुरानी दासी सुन्दरी ने आवाज दी—"चूल्हा जला दूँ, बहूरानी!"

विराज अचकचाकर उठ बैठी और आँचल से आँख तथा मुँह पोंछकर बाहर निकल आई।

सुन्दरी ने फिर पूछा—"चूल्हा जला दूँ?"

विराज ने धीमी आवाज में कहा—"जलादो, तुम लोगों के लिए रसोई बनानी ही पड़ेगी। मैं तो नहीं खाऊंगी।"

दासी ने नीलाम्बर को सुनाने की गरज से जोर से कहा—"वाह बहू, तो रात का खाना क्या तुमने एकदम छोड़ ही दिया ? आधा शरीर भी तो नहीं रह गया है।"

उसका हाथ पकड़कर खींचती हुई विराज रसोई घर की ओर चली गई।

चूल्हे की रोशनी विराज के चेहरे पर पड़ रही थी। थोड़ी ही दूर पर बैठी दासी उसे गौर से देख रही थी। सहसा कह उठी—"सच कहती हूं बहूरानी, तुम जैसा रूप मैंने कभी नहीं देखा। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के घर भी ऐसा रूप नहीं है।"

उसकी ओर मुखातिब होकर विराज ने झिझक के स्वर में कहा, "तू क्या राजा-महाराजाओं के घरों की भी खबर रखती है ?"

सुन्दरी करीब ३५-३६ साल की थी। किसी जमाने में उसके रूप की भी धूम थी और आज भी वह धूम बिल्कुल खत्म नहीं हो गई है।

वह कहा करती थी कि उसे कुछ भी याद नहीं है कि कब उसकी शादी हुई और कब वह विधवा हो गई। किन्तु सुहागिन के सौभाग्य से वह एकदम बची नहीं रही। उसकी यह सुकीर्ति उसके गांव कृष्णपुर में फैली हुई है। उसने हँसते हुए कहा—"राजा-महाराजाओं की भी थोड़ी-बहुत खबर रखती हूं बहूरानी, नहीं तो उस दिन झाड़ू से पूजा नहीं कर देती ?"

अब की सचमुच ही विराज ने गुस्सा होकर कहा—"तू अक्सर ऐसी ही बातें क्यों किया करती है, सुन्दरी ? उसने जो चाहा, कहा। इसके लिए तू क्यों झाड़ू मारती ? और बेकार ही मुझे तू क्यों सुनाया करती है। वे क्रोधी आदमी ठहरे, सुनेंगे तो क्या कहेंगे, बतला तो !"

सुन्दरी ने झेंपते हुए कहा—"वे सुनेंगे ही कैसे बहूरानी ? यह भी कोई बात है ?"

विराज ने कहा—"तू मुझे बात सिखलाने चली है ? और इसके अलावा जो बात खत्म हो चुकी है, उसे फिर उठाने से क्या फायदा !"

सुन्दरी तुरन्त कह उठी—"खत्म कहाँ हो गई ? कल भी तो मुझे बुलाकर...!"

विराज ने गुस्सा होकर कहा—"तू गई क्यों ? काम करती है मेरे यहाँ तो दूसरे के बुलाने पर चली क्यों जाती है ? और तूने तो कहा था कि उस दिन वे कलकत्ते चले गए ?"

सुन्दरी ने कहा—"दो महीने पहले वे सचमुच ही चले गए थे बहूरानी, किन्तु देखती हूँ कि सब के सब फिर आ गए हैं। और मेरे जाने की जो बात कह रही हो बहूरानी, तो सिपाही बुलाने आता है तो 'नहीं' कैसे कह दूँ ? वे ठहरे इस गाँव के जमींदार और हम उनकी गरीब रियाया ! किस बल पर हुकुमउदूली करूँ ?"

क्षणभर सुन्दरी की ओर देखते रहने के बाद विराज ने कहा—"वे इस गाँव के जमींदार है ?"

सुन्दरी ने हँसकर कहा—"हाँ, बहूरानी ! यह हल्का उन्होंने ही खरीदा है और तम्बू डालकर ठहरे हैं। सच कहती हूँ बहूरानी, सचमुच राजकुमार हैं। आह, क्या सुन्दर नाक-नकशा है ! आँखें, चेहरा...।"

विराज ने एकाएक टोकते हुए कहा—"चुप रह। यह तो मैं तुझसे पूछती नहीं। यह बता कि तुझसे कहा क्या था ?"

अब सुन्दरी कुछ खीझ उठी, किन्तु उस भावना को छिपा कर क्षोभभरी आवाज में वह बोली—"और क्या कहते, बहू ! बस तुम्हारी ही बात !"

"हूँ" कह कर विराज चुप हो रही।

दो साल पहले यह हल्का कलकत्ते के एक जमींदार

[illegible] [छ]ोटा लड़का राजेन्द्रकुमार बहुत दुश्चरित्र और उदण्ड है। [illegible], काम-काज सिखलाने और उसे संयत करने के लिए, [illegible] कलकत्ते से बाहर रखने के ख्याल से, उसके पिता उसे [illegible] [क]िसी इलाके में भेजना चाहते थे। पिछले साल वह यहाँ [illegible] [क]चहरी की इमारत न होने के कारण सप्तग्राम के उस पार [illegible] के किनारे एक आम के बाग में तम्बू डाल कर रहता [illegible] [ज]स दिन से वह यहाँ आया, उसने जमींदारी का कोई काम [illegible] ह्विस्की की बोतल पीठ पर बाँधे और कन्धे पर बन्दूक [illegible] [ल]व शिकारी कुत्तों के साथ वह दिन-दिनभर नदी के किनारे [illegible] करता और चिड़ियों का शिकार करता। छैः महीने [illegible] वेला की सुनहरी आभा से अनुरञ्जित, गीली धोती पहिने विराज पर उसकी नजर पड़ी। चारों ओर बड़े-बड़े और घने पेड़ होने के कारण विराज के घर के नजदीक का यह घाट किसी ओर से दिखाई नहीं देता था। वेखटके नहा-धोकर पानी का घड़ा उठाकर ज्योंही विराज खड़ी हुई, उसकी आँखें सामने खड़े एक अजनबी आदमी पर पड़ीं। चिड़ियों की टोह में राजेन्द्र यहाँ तक आ गया था। नजदीक ही के समाधिस्तूप पर खड़े होकर उसने विराज को देखा। एकाएक उसे विश्वास नहीं हुआ कि कोई मानव भी इतना सुन्दर हो सकता है! मन्त्र-मुग्ध-सा वह इस अतुल, असीम रूपराशि को देखता रह गया। किसी तरह अपनी गीली धोती से अपना शरीर ढकते हुए विराज जल्दी से वहाँ से चल दी। थोड़ी देर तक खड़े रहने के बाद राजेन्द्र धीरे-धीरे लौट गया। वह सोचने लगा कि कैसे यह संभव हुआ। जङ्गल के बीच इस छोटे-से गाँव में जहाँ एक भी भला आदमी नहीं रहता, इतना रूप कहाँ से आ गया! उसी रात को उस अदृष्टपूर्व रूपराशि का परिचय वह पा गया और हर घड़ी उसी की बात सोचता रहा। इसके बाद दो बार फिर विराज से उसकी देखा-देखी हुई।

उस दिन विराज ने घर जाकर सुन्दरी को बुलाकर कहा—

"सुन्दरी, घाट पर पीर साहब की मजार पर जो आदमी खड़ा है, उसे जाकर मना कर दे कि फिर कभी वह हमारे बाग में पैर न रक्खे।"

सुन्दरी मना करने गई किन्तु, पास पहुँचकर हतबुद्धि-सी खड़ी रह गई। कहा—"अरे आप ?"

राजेन्द्र ने सुन्दरी की ओर देखते हुए कहा—"तू मुझे पहिचानती नहीं ?"

सुन्दरी ने कहा—"कौन आपको नहीं पहिचानता, बाबूजी ?"

"जानती हो, कहाँ रहता हूँ ?"

सुन्दरी ने कहा—"जानती हूँ।"

राजेन्द्र ने कहा—"तुम एक बार वहाँ आ सकती हो ?"

सुन्दरी ने सलज्ज हँसी से सिर झुकाकर पूछा—"किसलिए बाबूजी ?"

"कुछ काम है, जरा आना।" कहकर बन्दूक कंधे पर रख कर वह चला गया।

तब से कितनी ही बार लुक-छिपकर सुन्दरी उस जमींदार की कचहरी मे गई है किंतु लौटकर विराज के सामने एक-आध इशारे के अलावा और कोई बात उठाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। सुन्दरी अच्छी तरह जानती थी कि यह बहू बाहर से चाहे कितनी ही मधुर और कोमल क्यो न दिखाई पड़े किन्तु अन्दर से यह बड़ी उग्र और कड़े स्वभाव की है। विराज मे एक गुण और था, और वह था उसका कठिन साहस। आदमी हो या भूत-प्रेत या सांप-बिच्छू, भय नाम की चीज वह जानती ही नहीं थी। और इस कारण से भी उससे कोई बात कहने का साहस सुन्दरी को नहीं होता था।

चूल्हे की लकड़ी सरका कर विराज ने सुन्दरी की ओर मुखातिब होकर कहा—"क्यों सुन्दरी, तुम तो कितनी ही बार वहाँ गई-आई हो, कितनी ही बातें भी की हैं, किन्तु, मुझे तो तुमने कभी भी कुछ नहीं बतलाया ?"

पहले तो सुन्दरी कुछ अप्रतिभ हुई किन्तु तुरन्त ही अपने आप को सम्भाल कर बोली—"तुमसे किसने कहा वहू कि मैं कितनी ही वार वहाँ गई-आई हूँ ?"

विराज ने कहा—"किसी ने कुछ कहा नहीं, मैं खुद ही जान जाती हूँ। वता इनाम में कल तुझे कितने रुपए मिले, दस ?"

सुन्दरी कुछ वोल नहीं सकी। उसका चेहरा पीला पड़ गया। चूल्हे के धुँधले प्रकाश में भी विराज ने यह देख लिया और समझ गई कि उसे कोई जवाव नहीं सूझ रहा है।

विराज ने मुस्कराकर कहा-"सुन्दरी ! तेरा कलेजा इतना वड़ा नहीं है कि मेरे सामने तू कुछ कह सके। वहाँ जा-आकर, और रुपए लेकर क्यों तू किसी वड़े आदमी के क्रोध का शिकार वनना चाहती है ? चली जा, कल से इस घर में कदम मत रखना, तेरा छुआ पानी पैरों पर डालने से भी मुझे नफरत होती है। अव तक मुझे तेरी सभी वातें मालूम नहीं थीं, किन्तु अव सव कुछ सुन चुकी हूँ। तेरे आँचल में जो दस रुपए का नोट वँधा है, इसे जाकर लौटा आ। तू गरीव है तो काम-धन्धा करके अपना पेट पाल। जवानी में जो कर चुकी है, वह अव तो नहीं कर सकती, परन्तु अव वेकार ही ४ आदमियों का सर्वनाश मतकर।"

सुन्दरी कुछ कहना चाहती थी किन्तु उसकी जुवान खुली ही नहीं।

विराज ने यह भी देख लिया, कहा—"झूठ वोलने से अव क्या होगा ? यह सव वातें मैं किसी से कहूँगी नहीं। पहले मैं नहीं जानती थी कि तेरे आँचल में वँधा हुआ यह नोट कहाँ से आया है, परन्तु अव सव समझ चुकी हूँ। चली जा, कल से मेरे घर की चौखट मत लाँघना।"

सुन्दरी अवाक् रह गई। उसको विश्वास ही नहीं होता था कि इस घर से उसका दाना-पानी उठ गया ! वह इस घर की पुरानी दासी है। उसने विराज की शादी देखी है, पूँटी को पाल-पोसकर वड़ा किया है और घर की मालकिन के साथ तीर्थ-यात्रा भी कर आई

है। वह भी इस परिवार की एक सदस्या-सी है और उसी को विराज ने आज चौखट लांघने को मना कर दिया। क्रोध और अभिमान से उसका गला रुँध गया। कितनी ही बातें उसकी जुबान पर आईं किन्तु जुबान नहीं हिली। विह्वल-सी वह देखती रह गई।

विराज सब कुछ समझ गई लेकिन कुछ बोली नहीं। मुँह फेरकर देखा, पतीली का पानी ठण्डा हो गया था। लोटा लेकर पास ही रखी हुई एक पीतल की कलसी तक वह गई, किन्तु क्षण भर स्थिर रह कर न मालूम क्या सोचकर उसने लोटा रख दिया और कहा—"नहीं, तेरे हाथ का पानी छूने से भी अनिष्ट होगा। इसी हाथ से तुमने रुपया लिया है।"

सुन्दरी इस तिरस्कार का कोई उत्तर न दे सकी।

विराज ने एक दूसरी लालटेन जलाई और घनघोर अंधेरी रात में वह अकेली ही कलसी लेकर आम के बगीचे के भीतर से होकर नदी से पानी लेने चल दी।

सुन्दरी के मनमें एक बार आया कि उसके पीछे-पीछे जाय, किन्तु जङ्गल का वह अन्धकारपूर्ण, तङ्ग रास्ता, चारों तरफ की प्राचीर, सप्तग्राम के जाने-अनजाने समाधि-स्तूप, बरगद का वह पुराना वृक्ष, सब उसकी आँखों के सामने फिर गया। मारे डर के उसके सिर के बाल तक काँप गए। धीमी आवाज में 'अरी मइया' कह कर वह स्तब्ध रह गई।

५

दो दिन बाद नीलाम्बर ने पूछा—"विराज, सुन्दरी नहीं दिखाई पड़ती है?"

विराज ने कहा—"मैंने उसे जवाब दे दिया।"

दिल्लगी समझकर नीलाम्बर ने कहा—"अच्छा किया। मगर, यह तो बताओ, उसे हुआ क्या?"

विराज ने कहा—"होगा क्या ? सचमुच ही मैंने छुड़ा दिया।"

फिर भी नीलांबर को विश्वास नहीं हुआ। विस्मित होकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"उसे कैसे छुड़ा दोगी ? वह लाख कसूर करे, परन्तु यह भी तो सोचो कि कितने दिनों से वह काम करती आ रही है। क्या किया उसने ?"

विराज ने कहा—"सोच-समझकर ही मैंने छुड़ाया है।"

नीलांबर ने कुछ चिढ़कर कहा—"यही तो पूछता हूं कि अच्छा कैसे समझा ?"

विराज पति के मनोभाव को समझ गई। क्षणभर तक उसकी ओर देखती रहने के बाद कहा—"मैंने अच्छा समझा, छुड़ा दिया। अब तुम अच्छा समझो तो बुला लाओ।" यह कहकर जवाब की प्रतीक्षा किए बिना ही वह वहाँ से रसोई घर चली गई।

नीलांबर ने समझा विराज चिढ़ गई है, इसलिए कुछ कहा नहीं। घण्टेभर बाद लौटकर, दरवाजे के बाहर ही खड़े होकर धीरे से कहा—"छुड़ा तो दिया, लेकिन काम कौन करेगा ?"

मुँह फेर कर विराज ने हँस दिया। कहा—"तुम।"

नीलांबर ने भी हँसते हुए कहा—"तो लाओ, झूँठे बर्तन साफ कर लाऊँ।"

हाथ की कलसी उसने झट से फेंक दी और नजदीक जाकर पति की पदधूलि माथे से लगाकर कहा—"तुम यहाँ से जाओ। जरा-सा मजाक करना भी मुश्किल है। सुनते ही ऐसी बातें कहने लगते हो, जिसे कान से सुनना भी महापाप है।"

नीलांबर ने झेंप कर कहा—"यह भी सुनना महापाप है ? समझ में नहीं आता कि किस बात से तुम्हें पाप नहीं लगता।"

विराज ने कहा—"तुम जब समझते ही नहीं तो इतने कहने पर भी झूँठे बर्तनों की ही बात क्यों चलाते हो ? देर मत करो, जाओ, नहा आओ, खाना तैयार है।"

नीलाम्बर चौखट पर बैठ [illegible]
घर का काम-धन्धा कौन करेगा ?"

विराज ने सिर उठाकर कहा"—[illegible]
है, न लालाजी ही। बिना काम के तो मैं ही [illegible]
खैर, जब काम नहीं चलेगा तो तुमसे कह दूँगी।"

नीलाम्बर ने कहा—"नहीं विराज, [illegible]
नौकर-दासी का काम मैं तुम्हें नहीं करने दूँगा। [illegible]
नहीं की है, बस, सब काम करने के लिए तुमने उसे [illegible]
क्यों नहीं दया है न ?"

विराज ने कहा—"नहीं। सचमुच ही उसने अपराध किया है।"

नीलाम्बर ने पूछा—"क्या ?"

विराज ने कहा—"यह मैं नहीं बतलाती। जाओो, नहा आओ, बैठे मत रहो।"

यह कहकर विराज [illegible] बाहर चली गई। थोड़ी देर बाद नीलाम्बर को उसी तरह बैठे देख कर उसने कहा—"अभी तक बैठे ही हो, गए नहीं ?"

नीलाम्बर ने [illegible] से कहा—"जा रहा हूँ विराज, मगर यह मुझसे नहीं होगा। दासी का काम तुम्हें कैसे करने दूँ ?"

इससे उसे [illegible] नहीं हुई। तब वह पति की ओर देख कर बोली—"क्या करोगे, बाग सुनूँ तो ?"

नीलाम्बर ने कहा—"सुन्दरी को नहीं रखना चाहती तो किसी और को रख लो। अकेली कैसे रहोगी तुम घर में ?"

विराज ने कहा—"कैसे भी रहूँ, परन्तु अब किसी को भी नहीं रखूँगी।"

नीलाम्बर ने फिर कहा—"यह कैसे होगा ? जब तक जिन्दा हूँ, तब तक असमान भी है। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

थोड़ी दूर पर विराज बैठ गई। कहा—"दरअसल, तुम्हें इसी बात का डर है कि लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। यह सब तो बस एक छलना है कि मैं कैसे रहूँगी और मुझे तकलीफ होगी।"

क्षोभ और आश्चर्य से सिर उठाकर नीलाम्बर ने कहा—"छलना है?"

विराज ने कहा—"हाँ, छलना है, मैं सब समझ गई हूँ। अगर तुम मेरी ओर देखते, मेरे दुखों पर ध्यान देते और मेरी बात मानते, तो आज मेरी ऐसी हालत नहीं हुई होती।"

नीलाम्बर ने कहा—मैं तुम्हारी बातें नहीं मानता?"

विराज ने जोर देकर कहा—"नहीं, एक भी नहीं! जब भी कुछ कहती हूँ, कोई न-कोई बहाना करके टाल देते हो। तुम्हें बस यही रहता है कि तुम्हें पाप लगेगा, तुम्हारी बात नहीं रहेगी और लोग तुम्हारी शिकायत करेंगे। एक बार भी यह सोचा है कि मेरा क्या होगा।"

नीलांबर ने कहा—"मेरे पाप की भागिनी तुम नहीं होगी? मेरी शिकायत से तुम्हारी शिकायत नहीं होगी?"

क्षणभर चुप रह कर विराज कहने लगी—"बड़े दुख से यह बात आज मुझे मुँह से निकालनी पड़ रही है कि तुम केवल अपनी ही सोचते हो और मेरी कुछ नहीं। आज तो अपने ही घर में मुझे दासी का काम करते देख शर्म मालूम हो रही है किन्तु कल ही अगर तुम्हें कुछ हो जाय तो परसों से मुझे दूसरे के घर जाकर यही काम करना पड़ेगा। इतना अवश्य है कि तुम्हें अपनी आँखों से देखना नहीं पड़ेगा, कानों से सुनना नहीं पड़ेगा, इसलिए तुम्हें शर्म नहीं लगेगी। सोचने विचारने की भी कोई जरूरत नहीं, क्यों?"

इस अभियोग का नीलांबर सहसा कोई जवाब नहीं दे सका। कुछ देर तक चुपचाप जमीन की ओर देखते रहने के बाद सिर उठा कर धीरे-से कहा—"यह तुम्हारे मन की बात नहीं है। तुम्हें दुख पहुँ-

चता है, इसी से नाराज होकर यह सब कह रही हो। बखूबी जानती हो कि स्वर्ग में बैठकर भी मैं तुम्हारा दुख नहीं देख सकूँगा।"

विराज ने कहा—"मैं भी पहले ऐसा समझती थी। बिना दुख में पड़े यह नही जाना जा सकता कि दुख क्या है। मर्दों की माया-ममता भी समय आए बिना ठीक-ठीक नहीं जानी जा सकती। खैर, मैं तुमसे झगडा करना नही चाहती। जाकर चुपचाप नहा आओ,दोपहर हो गया।"

"जाता हूँ"—कहकर नीलाम्बर वैसे ही बैठा रहा।

विराज ने फिर कहा—"आज दो साल हो गए पूँटी की शादी हुए। उससे भी पहले से आज तक की सभी बातों पर विचार करके मैंने देखा है—तुमने मेरी बातो पर ध्यान नही दिया। हमेशा अपने ही मन की करते गए। आदमी अपने घर के नौकर-चाकर की भी एक बात रख लेता है, किन्तु तुमने मेरी एक भी बात नहीं रखी।"

नीलाम्बर कुछ कह ही रहा था कि विराज कह उठी—"न-न मैं तुमसे बहस करना नही चाहती। कितने कष्ट और संकल्प से इष्टदेव का नाम लेकर मैंने कसम खाई है कि मैं तुमसे कोई बात नहीं कहूँगी। एकाएक अगर बात नहीं उठती तो मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहती। अब शायद तुम्हें याद न हो किन्तु बचपन मे एक बार सिर दर्द के कारण मैं सो गई थी, इसलिए दरवाजा खोलने मे देर हो गई थी, बस इसी पर तुम मुझे मारने चले थे। तुम्हें विश्वास नही हुआ था कि मेरी तबियत खराब है। उसी दिन मैंने कसम खाई थी कि अपनी बीमारी की बात कभी मैं तुमसे नहीं कहूँगी और आज तक मेरी वह कसम रही है।"

नीलाम्बर के सिर उठाते ही दोनों की आँखें मिल गईं। सहसा वह उठ गया और विराज के दोनों हाथ पकडकर घबराई आवाज में कहा—"यह नहीं होगा, विराज। तुम्हारी तबियत क्यों ठीक नहीं है? तुम्हें बताना ही होगा।"

धीरे-से अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए विराज ने कहा—"छोड़ो, लगता है...।"

नीलाम्वर ने कहा—"लगने दो, वताओ क्या हुआ ?"

विराज ने उदासी से हँसते हुए कहा—"कहाँ ! कुछ भी तो नहीं हुआ ! विल्कुल तो चंगी हूँ।"

नीलाम्वर को विश्वास नहीं हुआ। कहा—"चंगी तो नहीं हो। होती तो कई साल पुरानी वात उठाकर मेरा जी नहीं दुखाती जिसके लिए मैं कई वार माफी माँग चुका हूँ।"

"अच्छा अव नहीं कहूँगी।" कह कर विराज अपने आप को छुड़ाकर वैठ गई।

नीलाम्वर उसका मतलव समझ गया। दो-तीन मिनट तक चुप-चाप वैठे रहने के वाद उठकर चल दिया।

रात को चिराग जलाकर विराज चिट्ठी लिख रही थी। पलंग पर लेटे-लेटे नीलाम्वर चुपचाप देख रहा था। एकाएक वोल उठा—"इस जन्म में तो तुम्हारा कोई दुश्मन भी तुम पर दोप नहीं लगा सकता, किन्तु अपने पहले जन्म में पाप किए विना ऐसा नहीं होता।"

विराज ने सिर उठाकर पूछा—"क्या नहीं होता ?"

नीलाम्वर ने कहा—"तुम्हारा तन-मन ईश्वर ने राजरानी के लायक ही वनाया था, किन्तु...।"

विराज ने पूछा—"किन्तु क्या ?"

नीलाम्वर चुप हो रहा।

क्षणभर जवाव की प्रतीक्षा करने के वाद विराज ने रूखी आवाज में कहा—"यह खवर ईश्वर तुम्हें कव दे गए ?"

नीलाम्वर ने कहा—"आँख-कान हों तो ईश्वर सभी को खवर दे जाते हैं।"

"हूँ" कहकर विराज फिर चिट्ठी लिखने लगी।

थोड़ी देर तक चुप रहने के वाद नीलाम्वर ने फिर कहा—"उस

दिन तुमने कहा था कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। शायद यही सच है। किन्तु, इसमें क्या अकेले मेरा ही दोष है?"

विराज ने सिर उठाकर देखते हुए कहा—"अच्छा तो मेरा दोष बतला दो।"

नीलाम्बर ने कहा—"तुम्हारा दोष तो नहीं बतला सकूँगा, किंतु एक बात आज सच-सच कहूँगा। तुम यह कभी नहीं सोचतीं कि तुम जैसी कितनी ही औरतें ऐसे गुणहीन मूर्ख के पाले पड़ी हैं। यही तुम्हारे पहले जन्म का पाप है, नहीं तो दुख बर्दाश्त करने की कोई बात ही नहीं थी।"

विराज चुपचाप चिट्ठी लिखती रही। शायद उसने इस बात का जवाब न देने की सोची, किन्तु उससे रहा नहीं गया। मुँह घुमाकर पूछा—"तुम समझते हो कि ये सब बातें सुनकर मैं खुश होती हूँ?"

नीलाम्बर ने पूछा—"कौन-सी बातें?"

विराज ने कहा—"यही, जैसे मैं राजरानी बन सकती थी, बस तुम्हारे हाथ में पड़कर ऐसी हो गई। तुम समझते हो कि ऐसी बातें सुनकर मुझे खुशी होती है या जो ऐसी बातें कहता है, उसका मुँह देखने की तबियत होती है?"

नीलांबर ने देखा, विराज बहुत क्रोधित हो गई है। वह नहीं समझता था कि बात इतनी बढ़ जायगी। मन-ही-मन उसे बहुत सङ्कोच हुआ परन्तु एकाएक उसके दिमाग में यह बात नहीं आई कि कैसे उसे खुश करे।

विराज कहने लगी—"रूप-रूप-रूप। सुनते-सुनते कान पक गए। और भी लोग कहते हैं क्योंकि वे खासतौर से शायद यही देखते हैं, किन्तु तुम तो मेरे स्वामी हो, बचपन से ही तुम्हारे आश्रय में रहकर बड़ी हुई हूँ। तुम भी इससे बढ़कर और कुछ नहीं देख पाते? बस, यह रूप ही मुझमें सब कुछ है? क्या समझकर यह

ज़ुबान पर लाते हो ? मैं क्या रूप का व्यवहार करती हूँ या इसी रूप में फँसाकर तुम्हें रखना चाहती हूँ ?

नीलांबर ने घबराकर कहा—"न, न, यह नहीं...।"

विराज बात काटकर कहने लगी—"ठीक यही है । इसी कारण एक दिन मैंने पूछा था कि अगर मैं काली-कलूटी होती तो तुम मुझे इतना प्यार करते या नहीं, याद है ?"

नीलांबर ने सिर हिलाया—"याद है। किन्तु, तुमने तो कहा था...।"

विराज ने कहा—"कहा था कि काली-कलूटी होने पर भी मुझको प्यार करते, क्योंकि मुझसे शादी की है। मैं गृहस्थ की बेटी और गृहस्थ की बहू हूँ। यह सब बातें मुझसे करते हुए तुम्हें शर्म नहीं लगती ? पहले भी तुमने कहा था...।" कहते-कहते क्रोध और अभिमान से चिराग की रोशनी में उसकी आँखों के आँसू झिलमिलाने लगे।

स्वयं विराज ने ही एक दिन कहा था कि हाथ पकड़ लेने से क्रोध नहीं रह जाता। नीलांबर को सहसा वही बात याद आ गई। चटपट उठकर उसने विराज का दाहिना हाथ अपने हाथों में ले लिया और वहीं बैठ गया।

बाँए हाथ से विराज ने अपनी आँख पोंछ लीं।

उस रात को पति-पत्नी बड़ी रात तक जागते रहे। नीलांबर ने एकाएक पत्नी की ओर मुखातिब होकर मधुर स्वर में पूछा—"आज तुम्हें इतना गुस्सा क्यों आ गया, विराज ?"

विराज ने कहा—"तुमने ऐसी बात क्यों की ?"

नीलांबर ने कहा—"मैंने कोई बुरी बात तो की नहीं।"

विराज ने फिर बिगड़कर कहा—"फिर वही बात ! बहुत ही बुरी बात है। इसीलिए तो सुन्दरी को...।"

कहते-कहते विराज चुप हो रही।

क्षणभर चुप रहकर नीलांबर ने पूछा—"बस, इतनी-सी बात पर तुमने सुन्दरी को जवाब दे दिया ?"

"हाँ" कहकर विराज चुप हो रही।

नीलांबर ने फिर कुछ नही पूछा।

विराज अपने आप ही कहने लगी—"देखो जिद मत करो। मैं दूध पीती बच्ची नही हूँ। अच्छा बुरा सब कुछ समझती हूँ। उसने छुड़ा देने वाला काम किया था, इसी से छुड़ा दिया। उसका पूरा हाल अगर तुम सब मर्द न सुन पाओ तो न सही।"

नीलांबर ने कहा—"मैं सुनना भी नही चाहता।" यह कह नीलांबर एक ठण्डी साँस लेकर, करवट बदल कर सो गया।

× × ×

छोटे भाई पीताम्बर ने बँटवारे के दो-चार दिन बाद ही बाँस और चटाई की दीवार बनाकर अपना हिस्सा अलग कर लिया। दक्षिण की ओर एक दूसरा दरवाजा बना लिया था और सामने छोटी-सी एक बैठक भी बना ली थी। अपने घर को अच्छी तरह सजाकर वह बड़े आराम से रहता था। पहले भी वह अपने बड़े भाई से अधिक बोलता नहीं था, किन्तु अब तो सारा सम्बन्ध ही टूट गया था। इस ओर विराज को अक्सर दिन भर अकेले ही रहना पड़ता था। सुन्दरी के चले जाने के बाद बहुत-सा काम लोकलाज के कारण उसे एकान्त मे करना पड़ता था और इस तरह उसे रात को देर तक जागना पड़ता था।

एक दिन उसी तरह वह काम कर रही थी कि टट्टी के उस पार से एक धीमी मधुर आवाज ने कहा—"जीजी, रात तो बहुत हो गई है।"

विराज चौंक गई। फिर मधुर आवाज आई—"जीजी, मैं मोहिनी।"

विराज ने विस्मित होकर कहा—"छोटी बहू इतनी रात को...?"

मोहनी ने कहा—"हाँ जीजी, जरा पास आओ।"

विराज टट्टी के पास चली गई। छोटी बहू ने धीरे-से कहा—"जेठ जी सो गए हैं?"

विराज ने कहा—"हाँ।"

मोहिनी कहा—"कुछ कहना चाहती हूँ, जीजी, पर कह नहीं सकती।" यह कह कर चुप हो गई।

उसकी आवाज से लगा जैसे वह रो रही हो। विराज ने चिन्तित होकर पूछा—"क्या हुआ छोटी बहू?"

मोहिनी ने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया। लगा जैसे वह रो रही है।

विराज ने घबराकर पूछा—"क्या बात है बहू, कहती क्यों नहीं?"

अब मोहिनी ने भर्राई आवाज में कहा—"जेठ जी पर नालिश हुई है। कल, क्या कहते हैं, हाँ,, सम्मन आएगा। क्या होगा जीजी।"

विराज डर गई, किन्तु अपने मन का भाव छिपाते हुए उसने कहा—"तो इसमें डरने की क्या बात है, बहू?"

मोहिनी ने पूछा—"तो कोई डर नहीं, जीजी?"

विराज ने कहा—"डर किस बात का! मगर किसने की है नालिश?"

छोटी बहू ने कहा—"भोला मुकर्जी ने।"

विराज सन्नाटे में आगई। फिर कहा—"अब मैं समझ गई।" मुकर्जी का उन पर पावना है, शायद इसी से नालिश की है लेकिन इसमें डरने की तो कोई बात है नहीं छोटी बहू?"

कुछ देर तक चुप रहने के बाद छोटी बहू ने कहा—"मैंने तुमसे कभी अधिक बातचीत नहीं की है जीजी, और इस लायक भी नहीं हूँ

कि कोई बात कह सकूँ। परन्तु, अपनी छोटी बहन की एक बात आज मानोगी जीजी ?"

उसकी आवाज से विराज ने और द्रवित होकर कहा—"मानूँगी क्यों नहीं बहन ?"

मोहिनी ने कहा—"तो अपना हाथ इस टिकटी की ओर बढ़ा दो।"

विराज के हाथ बढ़ाते ही उस टिकटी की संधि से एक मुलायम और छोटे हाथ ने एक सुनहला हार रख दिया।

विराज ने चकित होकर कहा—"यह क्यों दे रही हो छोटी बहू ?"

छोटी बहू ने और भी धीमी आवाज मे कहा—"इसे बेचकर या बन्धक रखकर, जैसे भी हो, उसका कर्ज चुका दो जीजी।"

इस अप्रत्याशित सहानुभूति से विराज क्षणभर के लिए अभिभूत हो उठी। उसकी जुबान से कोई बात नहीं निकल सकी। लेकिन 'जाती हूँ जीजी' कहकर छोटी बहू जब जाने को हुई तब वह जल्दी से पुकार उठी—"बहू सुनो तो।"

छोटी बहू ने लौटकर पूछा—"क्या है जीजी ?"

विराज ने हार टिकटी के उस पार फेकते हुए कहा—"छि: छि: ऐसा नही करना चाहिए।"

छोटी बहू ने हार उठा लिया और क्षुब्ध होकर पूछा—"क्यों जीजी ?"

विराज ने कहा—"छोटे बाबू सुनेंगे !"

बहू ने कहा—"वे सुनेंगे कैसे ?"

"आज नहीं तो दो दिन बाद उन्हें मालूम हो ही जायगा। फिर क्या होगा ?"

छोटी बहू ने कहा—"उन्हें कभी नही मालूम हो सकेगा जीजी !

मा ने पिछले साल मरते समय इसे मुझे दिया था। तब से मैंने इसे
बाहर नहीं निकाला। तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ जीजी, ले लो।"

उसकी बातें सुनकर विराज की आँखें डबडबा आईं। वह
स्मित और स्तब्ध रह गई। इस औरत के व्यवहार के साथ जिसके
से कोई सम्बन्ध नहीं, वह घर के दो सहोदर भाइयों के व्यवहार की
तना करने लगी। फिर हथेली से आँखें पोंछकर उसने रुँधे कण्ठ से
हा—"आखिरी वक्त तक यह बात याद रहेगी बहन, किन्तु यह हार मैं
ले सकूँगी। इसके अलावा, अपने पति से छिपाकर कोई काम नहीं
करना चाहिए बहू, नहीं तो हम दोनों पर पाप पड़ेगा।"

छोटी बहू ने कहा—"तुम सभी बातें नहीं जानती हो जीजी, इसी
से कहती हो। धर्म-अधर्म की चिन्ता तो मुझे भी है जीजी, मरने के समय
मैं क्या उत्तर दूँगी ?"

विराज ने अपनी आँखें पोंछकर अपने आपको सम्हालते हुए
कहा—"सबको तो मैंने जाना बहू, किन्तु तुम्हें ही अब तक नहीं जान
सकी। मरने के समय तुम्हें कोई जवाब नहीं देना पड़ेगा, वह जवाब तो
अन्तर्यामी ने अभी लिख लिया होगा। बड़ी रात हो गई बहिन, अब
[illegible]र सो रहो।" यह कहकर उसे कुछ कहने का मौका दिए बिना ही
[illegible]ज वहाँ से चल दी।

लेकिन, वह अन्दर नहीं जा सकी। अँधेरे बरामदे के एक किनारे
में आँचल बिछाकर वह लेट गई। सब कुछ भूलकर उस समय वह उस
कम बोलने वाली, छोटी उम्र वाली बहू की दया और सहानुभूति की
बातें सोचने लगी। उसकी आँखों से निरन्तर आँसू गिरने लगे। रह-रह
कर उसके हृदय में एक कचोट-सी उठने लगी कि इतने नजदीक रहकर
भी वह इस छोटी बहू को जान न सकी और न जानने की कोशिश
कर सकी। यह सच है कि उसने कभी बहू की निन्दा नहीं की, पर
अपना समझकर कोई अच्छी बात भी नहीं की। बिजली जैसे क्षणभर

तीव्र अन्धकार को चीर देती है, वैसे ही यह छोटी बहू आज उसके हृदय के अन्तंतम को प्रकाशित कर गई। उसी तरह रोते-रोते न मालूम कब वह सो गई। अचानक किसी का हाथ लगने से वह अचकचा कर उठ बैठी। सिरहाने नीलाम्बर बैठा था।

नीलाम्बर ने कहा—"अन्दर चलो रात बीत चली है।"

पति का सहारा लेकर विराज चुपचाप अन्दर जाकर निर्जीव-सी पड़ रही।

६

एक साल बीत गया। इस बार रुपए में दो आने की भी फसल नहीं हुई। जिस जमीन से पूरे साल का काम चलता था, उसमें से बहुत-सी उसी मोहल्ले के भोलानाथ मुकर्जी ने खरीद लिया है। घर तक बन्धक है। लोग यह भी जान गए हैं कि छिपे तौर पर छोटे भाई पीतांबर ने ही उसे खरीद लिया है। बैल मर गया है। तालाब में दरार निकल आई है। विराज को कोई सहारा नजर नहीं आता। शरीर का एक हिस्सा जोर से बांध देने से सारा शरीर जैसे धीरे-धीरे अवसन्न होने लगता है, सारे संसार में उसका सम्बन्ध भी वैसा ही होने लगा है। विराज पहले थोड़ी हँसी-मजाक भी कर लेती थी, किन्तु अब उस घर मे कोई भी ऐसा आदमी नहीं रह गया जिससे वह ऐसी बात कर सके। कोई उससे मिलने-जुलने आता तो भी उसे चिढ़ होती, स्वभाव से ही वह बड़ी अभिमानिनी है। अब पास-पड़ोस के लोगों की मामूली बातों से भी वह चिढ़ जाती है। देखने से लगता है कि गृहस्थी के कामों में भी अब उनकी तबियत नहीं लगती। उसके कमरे का बिस्तर गन्दा हो गया है। अरगनी पर कपड़े तितर-बितर पड़े हैं। कमरे का कूड़ा भी वैसे ही पड़ा रह जाता है, उसे फेंकने की भी ताकत जैसे उसमें अब नहीं रह गई है।

इस बीच नीलाम्बर ने दो बार अपनी छोटी बहिन [illegible]

को लाने की कोशिश की मगर उन लोगों ने मना कर दिया। करीब पन्द्रह दिन हुए, उसने एक चिट्ठी लिखी थी परन्तु हरिमती के ससुर ने उसका जवाब भी नहीं दिया। विराज के सामने यह सब नहीं कहा जा सकता, वह एकदम चिढ़ जाती है। उसने पूँटी को बेटी की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया लेकिन आजकल उसकी बात सुनते ही चिढ़ जाती है।

आज सवेरे गाँव के डाकखाने से नीलाम्बर उदास मुँह लिए लौट आया और कहा—"पूँटी के ससुर ने जवाब भी नहीं दिया। मालूम होता है कि अब की दुर्गा-पूजा में भी उसे नहीं देख सकूँगा।"

काम करते-करते विराज ने एक बार सिर उठाया मगर कुछ कहे बिना ही उठकर चली गई।

दोपहर को जब नीलाम्बर खाने को बैठा तो उसने धीरे-से कहा—"उसने कौन-सा अपराध किया है कि उसका नाम लेते ही तुम चिढ़ जाती हो?"

विराज ने सिर उठाकर कहा—"यह किसने कहा कि मैं चिढ़ उठती हूँ?"

नीलाम्बर ने कहा—"कहेगा कौन? मैं खुद ही देखता हूँ।"

क्षणभर पति की ओर देखती रहने के बाद विराज ने कहा—"देखते हो तो अच्छा है।" कहकर वह वहाँ से जाने लगी।

नीलाम्बर ने टोककर कहा—"बताओ तो भला कि एकदम बदल कैसे गई!"

विराज ने घूमकर कहा—"दूसरों के बदलने से ही बदल जाना पड़ता है।" कहकर वह बाहर चली गई।

इसके दो-तीन दिन बाद एक दिन तीसरे पहर नीलाम्बर चंडी-मण्डप के बरामदे में बैठा हुआ कुछ गुनगुना रहा था। विराज कुछ देर चुप रही। फिर, सामने आकर खड़ी हो गई।

नीलाम्बर ने सिर उठाकर कहा—"क्या है?"

विराज तीखी नजर से देखती रही।

नीलाम्बर ने सिर नीचा कर लिया। विराज ने रूखी आवाज में कहा—"जरा सिर उठाओ तो देखूं ?"

नीलाम्बर ने सिर नहीं उठाया, चुप रहा।

विराज ने पहले की तरह ही कड़ी आवाज से कहा—"आँखें तो खूब चढ़ी हैं। दम लगाना फिर शुरू हो गया ?"

नीलाम्बर डर से आँखें नीची किए हुए काठ के पुतले-सा बैठा रहा। विराज से वह हमेशा से ही डरता था, परन्तु इधर कुछ दिनों से वह बिल्कुल बारूद बन गई थी। किसी भी समय भड़क उठती थी।

थोड़ी देर तक स्थिर भाव से खड़े रहने के बाद विराज ने कहा—"दम लगाकर 'बम भोला बाबा' बन बैठने का यही तो समय है।" कहकर वह अन्दर चली गई।

दूसरे दिन नीलाम्बर से नहीं रहा गया। लाज-शर्म सब छोड़कर सवेरे ही उसने पीताम्बर को बाहर कमरे में बुलाकर कहा—"मुझे तो पूँटी के ससुर ने जवाब तक नहीं दिया। तुम ही एक बार कोशिश कर देखते। शायद दो दिनों के लिए ही बहिन आ सके।"

भाई की ओर देखते हुए पीताम्बर ने कहा—"तुम्हारे रहते, भला मैं क्या कोशिश करूँ ?"

धूर्तता की यह बात सुनकर नीलाम्बर को गुस्सा आ गया किन्तु उसने अपना भाव छिपाते हुए कहा—"जैसे वह मेरी बहिन है, वैसे तुम्हारी भी है। बस, यही समझ लो कि मैं मर गया, अब तुम्हीं अकेले हो।"

पीतांबर ने कहा—"तुम्हारी तरह असत्य को मैं सत्य नहीं समझ सकता और तुम्हारी चिट्ठियों का जब कोई जवाब नहीं दिया तो मेरी ही चिट्ठियों का जवाब क्यों देंगे ?"

नीतांबर ने छोटे भाई की यह बात भी बर्दाश्त कर ली। कहा—"जो सत्य नहीं है, वही मैं समझ लेता हूँ। खैर, यही सही। यह बात लेकर मैं तुमसे झगड़ा करना नहीं चाहता। किन्तु मेरी चिट्ठी

का जवाब तो वह इसलिए नहीं देते कि मैं शादी की सभी शर्तें पूरी न कर सका, मगर यह सब कहने के लिए मैंने तुम्हें नहीं बुलाया। तुम यह बताओ कि जो कहता हूँ, वह कर सकोगे या नहीं ?"

पीतांबर ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। शादी के पहले मुझसे पूछा था ?"

नीलांबर ने कहा—"पूछ कर क्या होता ?"

पीतांबर ने कहा—"अच्छी ही राय देता।"

नीलांबर आग-बबूला हो गया फिर भी अपने आपको सँभाल कर कहा—"तो तुम नहीं कर सकोगे ?"

पीतांबर ने कहा—"जी नहीं। वे जैसे पूँटी के ससुर हैं, वैसे मेरे भी। वे बड़े हैं; भेजना नहीं चाहते तो उनके खिलाफ मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मेरी यह आदत नहीं है।"

नीलांबर के जी में आया कि लाठी से उसका मुँह तोड़ दे, मगर उसने अपने आपको सँभालकर खड़े होकर कहा—"निकल जाओ–हट जाओ मेरे सामने से।"

पीतांबर ने भी क्रोधित होकर कहा—"बेकार ही नाराज क्यों हो रहे हो ? अगर न जाऊँ तो क्या जबरदस्ती निकाल दोगे ?"

नीलांबर ने दरवाजे की ओर इशारा करते हुए कहा—"बुढ़ापे में मार खाकर अगर जाना नहीं चाहते तो हट जाओ मेरे सामने से।"

पीतांबर कुछ कहने ही वाला था कि नीलांबर ने कहा—"मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता। बस, चले जाओ।"

नीलांबर अपनी शारीरिक शक्ति के लिए मशहूर था।

पीतांबर धीरे-से बाहर निकल गया। उसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

गोलमाल सुनकर विराज बाहर निकल आई। पति का हाथ पकड़ कर उसने कहा—"छिः! सब कुछ जानकर भी क्या भाई से झगड़ा किया जाता है ताकि सभी सुनकर हँसी उड़ाएँ।"

नीलांबर ने उद्धत स्वर से कहा—"तो दब जाऊँ ? सब कुछ बर्दाश्त कर सकता हूँ विराज, परन्तु, धूर्तता नहीं ।"

विराज ने कहा—"अगर हाथ पकड़ कर वे तुम्हें बाहर निकाल दें तो कहाँ खड़े होओगे ? यह भी सोचा है कभी ? अकेले तो हो नहीं ।"

नीलांबर ने कहा—"जो सोचने वाला होगा, सोचेगा । मैं बेकार क्यों चिन्ता करूँ ?'

विराज ने कहा—"ठीक ही तो है ! ढोल-बजाना और महाभारत पढ़ना जिसका काम है, उसके लिए सोचना विचारना तो बेकार है ?"

विराज ने यह बात मजाक में नहीं कही और नीलांबर को भी मधुर नही लगी तो भी उसने सहज स्वर मे कहा—"उसे ही मैं सब से बड़ा काम समझता हूँ । और चिन्ता करने से भाग्य में जो लिखा होगा, वह तो मिट जाने का नही ।" फिर माथे की ओर इशारा करते हुए कहा—"यहाँ लिखा रहने के कारण ही कितने राजा-महाराजाओं को पेड़ों के नीचे रहना पड़ा है, विराज ।...फिर मैं तो एक मामूली आदमी हूँ ।"

विराज मन-ही-मन जली जा रही थी । कहा—"यह सब कहना जितना आसान है, करना उतना आसान नही । और तुम भले ही पेड़ के नीचे रह सको पर, मैं तो नही रह सकती । औरतों को लाज-शरम होती है—खुशामद करके या दासी का काम करके मुझे तो किसी आश्रय में रहना ही पड़ेगा । छोटे भाई की इच्छानुसार अगर नहीं रह सकते हो तो उससे हाथापाई करके सब कुछ मिट्टी मे मत मिलाओ ।" कहकर विराज बाहर निकल गई ।

इसके पहले भी पति-पत्नी मे कई बार झगड़ा हो चुका है और नीलांबर इससे परिचित है । परन्तु, आज जो कुछ हुआ, वह वैसा नहीं था । इस मूर्ति से वह बिल्कुल अपरिचित था । वह भयभीत-सा खड़ा रह गया ।

थोड़ी देर बाद ही विराज उस कमरे मे आई और कहा.

तरह खड़े क्यों हो ? देर हो रही है, जाओ जल्दी नहाकर पूजा-पाठ करके खा लो। जब तक मिलता है तभी तक सही।" यह कहकर पति के कलेजे में एक और शूल बेध कर चली गई।

कमरे की दीवाल पर राधा-कृष्ण की तस्वीर थी। इधर देख कर सहसा नीलांबर रो पड़ा, परन्तु, तुरन्त ही आँखें पोंछ लीं ताकि कोई देख न ले।

और विराज भी दिन भर रोती रही। जिसकी मामूली तकलीफ भी वह बर्दाश्त नहीं कर पाती थी, उसी को इतनी कड़ी बात कह देने के कारण उसके दुख और पश्चाताप की कोई सीमा नहीं रही। उसने न कुछ खाया न पीया, दिनभर इस कमरे से उस कमरे में घूमती रही। और शाम को तुलसी की गाछ तले चिराग जलाकर गले में आँचल डालकर जब वह प्रणाम करने लगी तो फफक-फफक कर रो पड़ी।

घर में सन्नाटा था। नीलांबर दोपहर को खाने बैठा और तुरन्त ही जो उठकर चला गया तब से अभी तक वापस नहीं आया था।

विराज की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे, कहाँ जाए और किससे क्या कहे ? चारों ओर देखने पर भी कोई उपाय नजर नहीं आया। अँधेरे आंगन में वह औंधी पड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मुँह से बस, यही निकलने लगा—"अन्तर्यामी एक बार मेरी ओर आँख उठाकर तो देखो ! जो कोई कष्ट या पाप नहीं जानता उसे कोई तकलीफ मत देना, देवता ! अब मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकेगा।"

रात के नौ बज रहे थे। नीलांबर आकर चुपचाप चारपाई पर लेट गया।

विराज अन्दर आकर उनके पैरों के पास बैठ गई परन्तु, नीलांबर ने न तो उसकी ओर देखा और न कुछ कहा।

थोड़ी देर बाद विराज ने पति के पाँव पर अपना पैर रक्खा, परन्तु नीलांबर ने तुरन्त ही अपना पैर खींच लिया। चार-पाँच मिनट

भीन बीत गए। विराज का सोया हुआ अभिमान फिर जागने लगा तो भी उसने मधुर-स्वर में कहा—"चलो, खाना खा लो।"

नीलांबर चुप रहा। विराज ने कहा—"आज दिनभर कुछ नहीं खाया। किस पर नाराज हो, जरा सुनूं तो?"

नीलांबर ने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया।

विराज ने पूछा—"बताओ न!"

नीलाम्बर ने उदास स्वर में कहा—क्या होगा सुनकर?"

विराज ने कहा—"तो सुनूं नहीं!"

अबकी नीलांबर उठ बैठा और विराज के चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाकर कहा—"मैं तुमसे बड़ा हूँ विराज, कोई मजाक नहीं है।"

उसकी उस आवाज से विराज स्तब्ध रह गई—ऐसा गम्भीर कण्ठ-स्वर तो उसने कभी भी किसी दिन नहीं सुना था।

७

आगरा के गंज में पीतल ढालने के कई कारखाने थे। मुहल्ले की छोटी जाति की लड़कियाँ मिट्टी के साँचे बनाकर वहां बेचा करती थीं। उन्हीं में से एक लड़की को बुलाकर अत्यन्त दुखी विराज ने साँचा बनाना सीख लिया था। वह बहुत ही बुद्धिमती और चतुर थी। दो ही दिनों में काम सीखकर वह सबसे अच्छा साँचा बनाने लगी। व्यापारी खुद ही आने लगे और नगद पैसे देकर उससे साँचा खरीदने लगे। इस तरह वह रोज ही आठ-दस आने पैसा कमा लेती, मगर लाज के कारण पति से यह बात नहीं कहती।

नीलांबर के सो जाने के बाद बड़ी रात को वह उठती और साँचे बनाती। आज रात को भी वह साँचे बनाने गई, मगर थकावट के कारण वहीं सो गई। नीलांबर सहसा जाग गया और पलङ्ग पर

तरह खड़े क्यों हो ? देर हो रही है, जाओ जल्दी नहाकर पूजा-पाठ करके खा लो। जब तक मिलता है तभी तक सही।" यह कहकर पति के कलेजे में एक और शूल वेध कर चली गई।

कमरे की दीवाल पर राधा-कृष्ण की तस्वीर थी। इधर देख कर सहसा नीलांबर रो पड़ा, परन्तु, तुरन्त ही आँखें पोंछ लीं ताकि कोई देख न ले।

और विराज भी दिन भर रोती रही। जिसकी मामूली तकलीफ भी वह बर्दाश्त नहीं कर पाती थी, उसी को इतनी कड़ी बात कह देने के कारण उसके दुख और पश्चाताप की कोई सीमा नहीं रही। उसने न कुछ खाया न पीया, दिनभर इस कमरे से उस कमरे में घूमती रही। और शाम को तुलसी की गाछ तले चिराग जलाकर गले में आँचल डाल-कर जब वह प्रणाम करने लगी तो फफक-फफक कर रो पड़ी।

घर में सन्नाटा था। नीलांबर दोपहर को खाने बैठा और तुरन्त ही जो उठकर चला गया तब से अभी तक वापस नहीं आया था।

विराज की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे, कहाँ जाए और किससे क्या कहे ? चारों ओर देखने पर भी कोई उपाय नजर नहीं आया। अँधेरे आँगन में वह औंधी पड़कर फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मुँह से बस, यही निकलने लगा—"अन्तर्यामी एक बार मेरी ओर आँख उठाकर तो देखो ! जो कोई कष्ट या पाप नहीं जानता उसे कोई तकलीफ मत देना, देवता ! अब मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकेगा।"

रात के नौ बज रहे थे। नीलांबर आकर चुपचाप चारपाई पर लेट गया।

विराज अन्दर आकर उनके पैरों के पास बैठ गई परन्तु, नीलांबर ने न तो उसकी ओर देखा और न कुछ कहा।

थोड़ी देर बाद विराज ने पति के पाँव पर अपना पैर रक्खा, परन्तु नीलांबर ने तुरन्त ही अपना पैर खींच लिया। चार-पाँच मिनट

मौन बीत गए। विराज का सोया हुआ अभिमान फिर जागने लगा तो भी उसने मधुर-स्वर में कहा—"चलो, खाना खा लो।"

नीलांबर चुप रहा। विराज ने कहा—"आज दिनभर कुछ नहीं खाया। किस पर नाराज हो, जरा सुनूँ तो ?"

नीलाबर ने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया।

विराज ने पूछा—"बताओ न !"

नीलाम्बर ने उदास स्वर में कहा—क्या होगा सुनकर ?"

विराज ने कहा –"तो सुनूँ नहीं !"

अबकी नीलाबर उठ बैठा और विराज के चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाकर कहा—"मैं तुमसे बड़ा हूँ विराज, कोई मजाक नहीं है।"

उसकी उस आवाज से विराज स्तब्ध रह गई—ऐसा गम्भीर कण्ठ-स्वर तो उसने कभी भी किसी दिन नहीं सुना था।

७

मागरा के गंज में पीतल ढालने के कई कारखाने थे। मुहल्ले की छोटी जाति की लड़कियाँ मिट्टी के साँचे बनाकर वहां बेचा करती थी। उन्हीं में से एक लड़की को बुलाकर अत्यन्त दुखी विराज ने सांचा बनाना सीख लिया था। वह बहुत ही बुद्धिमती और चतुर थी। दो ही दिनों में काम सीखकर वह सबसे अच्छा साँचा बनाने लगी। व्यापारी खुद ही आने लगे और नगद पैसे देकर उससे साँचा खरीदने लगे। इस तरह वह रोज ही आठ-दस आने पैसा कमा लेती, मगर लाज के कारण पति से यह बात नही कहती।

नीलांबर के सो जाने के बाद बड़ी रात को वह उठती और साँचे बनाती। आज रात को भी वह साँचे बनाने गई, मगर थकावट के कारण वहीं सो गई। नीलांबर सहसा जाग गया और पलङ्ग पर

किसी को न देखकर वाहर निकल आया। विराज के इधर-उधर साँचे पड़े थे और उसके हाथ भी कीचड़ से सने थे। वहीं ठण्ड में गीली जमीन पर एक ओर वह पड़ी थी।

आज तीन दिन से पति-पत्नी में वोल-चाल नहीं थी। नीलांवर की आँखें छलछला गई। वह वहीं पर वैठ गया और विराज के सिर को सावधानी से अपनी गोद में रख लिया। विराज कुछ सकपकाई और दोनों पैरों को समेट कर और मजे में सो गई नीलांवर ने वांए हाथ से अपनी आँखें पोंछलीं और पास ही रखे चिराग को जरा तेज करके एक टक अपनी पत्नी का मुंह निहारने लगा। यह क्या हो गया है। विराज की आँखों के कोने स्याह हो गये हैं। सुन्दर और सुडील माथे पर दुश्चिता की रेखा साफ-झलक रही थी। एक अव्यक्त और असीम वेदना से उसका सम्पूर्ण हृदय मसोस उठा। असावधानी के कारण आँसू की एक वूंद विराज की पलक पर टपक पड़ी। विराज की आँखें खुल गई। क्षणभर देखती रहने के वाद हाथ फैलाकर वह पति की छाती से लिपट गई और करवट फेरकर उसकी गोद में मुंह छिपा कर पड़ रही। नीलांवर उसी तरह वैठा-वैठा रोता रहा। दोनों ही चुप रहे। रात वीत चली। जव पौ फट गई तो नीलांवर ने सँभल कर पत्नी के माथे पर हाथ रख कर स्नेहपूर्वक कहा—"अदर चलो विराज, ठण्ड में मत पड़ी रहो।"

"चलो" कहकर विराज उठ वैठी और पति का हाथ पकड कर अन्दर जाकर सो रही।

सवेरे ही नीलांवर ने कहा—"विराज, कुछ दिन तुम अपने मामा के घर घूम-फिर आओ। मैं भी जरा कलकत्ता जाऊँगा।"

विराज ने पूछा—"कलकत्ता जाकर क्या होगा ?"

नीलांवर ने कहा—"पैसा कमाने का वहाँ कुछ-न-कुछ उपाय हो ही जायगा वात मानो विराज, दो-चार महींने वहीं जाकर रहो।"

विराज ने कहा—"कब तक मुझे बुला लाओगे ?"

नीलांबर ने कहा—"छः महीने के अन्दर ही बुला लूँगा, वायदा करता हूँ।"

"अच्छा !"

चार-पाँच दिनों के बाद बैलगाड़ी आई। विराज के मामा का घर वहाँ से आठ-दस कोश पर है। बैलगाड़ी से ही जाना होता है। विराज के व्यवहार से यात्रा का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ा।

नीलांबर व्यग्र होकर उसे सावधान करने लगा।

विराज ने काम करते-करते कहा—"आज तो मैं नहीं जाऊँगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

नीलांबर ने विस्मित होकर पूछा—"तबियत खराब है ?"

विराज ने कहा—"हाँ, बहुत खराब है।" कहकर उदास मुँह किए पीतल की कलसी कमर पर रखकर पानी लेने के लिये वह नदी की ओर चलदी। उस दिन बैलगाड़ी लौट गई। रात को बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर दो दिन बाद जाने के लिए वह फिर राजी होगई।

दो दिन बाद फिर बैलगाड़ी आई। नीलाम्बर ने आकर खबर दी तो विराज फिर पलट गई—"नहीं मैं कभी नहीं जाऊँगी।"

नीलांबर ने चिन्तित होकर कहा—"क्यों ?"

विराज रो पड़ी—"मैं नहीं जाऊँगी। मेरे पास न तो गहने हैं, न अच्छे कपड़े हैं। मैं नहीं जाऊँगी।"

नीलाम्बर ने क्रोधित होकर कहा—"जब थे तब तो एक बार भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा !"

धोती के छोर से विराज आँसू पोंछने लगी।

नीलाम्बर ने कहा—"यह छल मैं समझता हूँ। मुझे सन्देह तो पहले ही से था परन्तु, सोचता था कि दुख-कष्ट के कारण अब तुम्हें होश

किसी को न देखकर वाहर निकल आया। विराज के इधर-उधर सांचे पड़े थे और उसके हाथ भी कीचड़ से सने थे। वहीं ठण्ड में गीली जमीन पर एक ओर वह पड़ी थी।

आज तीन दिन से पति-पत्नी में वोल-चाल नहीं थी। नीलांवर की आँखें छलछला गईं। वह वहीं पर वैठ गया और विराज के सिर को सावधानी से अपनी गोद में रख लिया। विराज कुछ सकपकाई और दोनों पैरों को समेट कर और मजे में सो गई नीलांवर ने वांए हाथ से अपनी आँखें पोंछलीं और पास ही रखे चिराग को जरा तेज करके एक टक अपनी पत्नी का मुँह निहारने लगा। यह क्या हो गया है। विराज की आँखों के कोने स्याह हो गये हैं। सुन्दर और सुडौल माथे पर दुश्चिंता की रेखा साफ-झलक रही थी। एक अव्यक्त और असीम वेदना से उसका सम्पूर्ण हृदय मसोस उठा। असावधानी के कारण आँसू की एक वूंद [illegible]ाज की पलक पर टपक पड़ी। विराज की आँखें खुल गईं। क्षणभर [illegible]खती रहने के वाद हाथ फैलाकर वह पति की छाती से लिपट गई और करवट फेरकर उसकी गोद में मुँह छिपा कर पड़ रही। नीलांवर उसी तरह वैठा-वैठा रोता रहा। दोनों ही चुप रहे। रात वीत चली। जव पौ फट गई तो नीलांवर ने सँभल कर पत्नी के माथे पर हाथ रख कर स्नेहपूर्वक कहा—"अंदर चलो विराज, ठण्ड में मत पड़ी रहो।"

"चलो" कहकर विराज उठ वैठी और पति का हाथ पकड कर अन्दर जाकर सो रही।

सवेरे ही नीलांवर ने कहा—"विराज, कुछ दिन तुम अपने मामा के घर घूम-फिर आओ। मैं भी जरा कलकत्ता जाऊँगा।"

विराज ने पूछा—"कलकत्ता जाकर क्या होगा ?"

नीलांवर ने कहा—"पैसा कमाने का वहाँ कुछ-न-कुछ उपाय हो ही जायगा वात मानो विराज, दो-चार महीने वहीं जाकर रहो।"

विराज ने कहा—"कब तक मुझे बुला लाओगे ?"

नीलांबर ने कहा—"छः महीने के अन्दर ही बुला लूँगा, वायदा करता हूँ।"

"अच्छा !"

चार-पाँच दिनों के बाद बैलगाड़ी आई। विराज के मामा का घर वहाँ से आठ-दस कोस पर है। बैलगाड़ी से ही जाना होता है। विराज के व्यवहार से यात्रा का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ा।

नीलांबर व्यग्र होकर उसे सावधान करने लगा।

विराज ने काम करते-करते कहा—"आज तो मैं नहीं जाऊँगी। मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

नीलांबर ने विस्मित होकर पूछा—"तबियत खराब है ?"

विराज ने कहा—"हाँ, बहुत खराब है।" कहकर उदास मुँह किए पीतल की कलसी कमर पर रखकर पानी लेने के लिये वह नदी की ओर चलदी। उस दिन बैलगाड़ी लौट गई। रात को बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर दो दिन बाद जाने के लिए वह फिर राजी होगई।

दो दिन बाद फिर बैलगाड़ी आई। नीलांबर ने आकर खबर दी तो विराज फिर पलट गई—"नहीं मैं कभी नही जाऊँगी।"

नीलांबर ने चिन्तित होकर कहा—"क्यों ?"

विराज रो पड़ी—"मैं नहीं जाऊँगी। मेरे पास न तो गहने हैं, न अच्छे कपड़े हैं। मैं नहीं जाऊँगी।"

नीलाम्बर ने क्रोधित होकर कहा—"जब थे तब तो एक बार भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा !"

धोती के छोर से विराज आँखें पोंछने लगी।

नीलाम्बर ने कहा—"यह छल मैं समझता हूँ। मुझे सन्देह तो पहले ही से था परन्तु, सोचता था कि दुख-कष्ट के कारण अब तुम्हें होश

नीलाम्बर ने हँसते-हँसते कहा—"यह पागल है क्या जो नदी में दो-चार छोटी मछलियों के भी रहने भर को पानी नहीं है और यह जमींदार वंसी डाले दिनभर बैठा रहता है।"

विराज किसी तरह भी अपने पति की हँसी में साथ नहीं दे सकी।

नीलांवर कहने लगा—"मगर, यह तो अच्छा नहीं है। भले आदमियों के मकानों के घाट के सामने उसके दिन भर बैठे रहने से स्त्रियां और लड़कियां कैसे वाहर निकलेंगी? तुम लोगों को तो बड़ी असुविधा होती होगी।"

विराज ने कहा—"उपाय ही क्या है?"

नीलांवर ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"वंसी लेकर पागलपन करने की क्या कोई जगह और नहीं है? कल सवेरे ही कचहरी जाकर कह आऊँगा कि ज्यादा शौक है तो वंसी लेकर कहीं और बैठे। हूँ, हमारे घर के सामने यह सब नहीं हो सकेगा।"

यह बात सुनकर विराज कुछ डर गई। उसने घबराकर कहा—"न-न, यह सब तुम्हें कहने की कोई जरूरत नहीं। नदी पर सबका हक है।"

नीलाम्वर ने विस्मित होकर कहा—"क्या कह रही हो विराज, अपने अच्छे-बुरे का विचार नहीं करना चाहिए? कल ही जाकर कह आऊँगा और अगर नहीं माना तो खुद ही जाकर घाट वगैरह तोड़-फोड़ कर फेंक दूँगा। देखूँ, मेरा क्या कर लेता है!"

विराज सकते में आ गई। धीरे-से कहा—"तुम जमींदार से हुज्जत करने जाओगे?"

नीलाम्वर ने कहा-"जाऊँगा क्यों नहीं? बड़े आदमी हैं तो जो जी में आया वही करेंगे?"

विराज ने कहा—"सावित कर सकोगे कि यह अत्याचार है?"

नीलांवर ने झल्लाकर कहा—"इस सब झंझट में मैं नहीं पड़ता।

दुनिया देख रही है कि वह अत्याचार कर रहा है, फिर साबित क्या करना है ? मैं निबट लूँगा।"

क्षणभर पति की ओर गौर से देखती रहने के बाद विराज ने कहा—"दिमाग जरा ठण्डा करो। जिसे दोनों वक्त खाना भी नहीं मिलता, उसके मुँह से यह बात सुनकर लोग थू-थू करेंगे।"

नीलांबर ने कहा—"कैसे ?"

विराज ने कहा—"कैसे क्या ? तुम जमींदार के लड़के से लड़ना चाहते हो ?"

विराज के मुँह से वह बात इतने कड़े ढङ्ग से निकली कि नीलांबर सह न सका। एकदम आग बबूला होकर उसने कहा—"तूने क्या मुझे कुत्ता-बिल्ली समझ लिया है जो हर वक्त खाने का ताना दिया करती है ? कब दोनों वक्त खाना तुम्हें नहीं मिला ?"

दुख-तकलीफ के कारण विराज में पहले की-सी सहनशीलता नहीं रह गई थी। उसने भी चिढ़कर कहा—"बेकार मत चिल्लाओ। तुम्हें यह नहीं मालूम कि कैसे दोनों वक्त खाना मिलता है, यह मैं ही जानती हूँ और जानते हैं अन्तर्यामी। इस मामले में अगर तुम कुछ कहने गए तो मैं जहर खा लूँगी।" कहते-कहते विराज ने जब सिर उठाया तो देखा कि नीलांबर का चेहरा एकदम लाल हो गया है। उसकी विकल आँखों के सामने विराज संकोच से एकदम सिमट-सी गई। बिना कुछ कहे वह वहाँ से खिसक गई। नीलांबर वैसे ही खड़ा रहा। इसके बाद एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर वह बाहर चला गया और स्तब्ध होकर चण्डीमण्डप के किनारे बैठ गया।

प्रचण्ड क्रोध में उसने अपना सिर एक ऐसी जगह में जोर से उठाया जो ज्यादा ऊँची नहीं थी पर जोर की टक्कर खाकर वह बिल्कुल निस्पन्द रह गया। नीलांबर के कानों में विराज की आखिरी बात ही गूँजने लगी कि "गृहस्थी कैसे चलती है!" रह-रहकर उस गहरी

अँधेरी रात में आँगन में लेटी हुई विराज का चेहरा याद आने लगा। सच ही तो है ! अब वह जान गया कि यह असहाय नारी कैसे गृहस्थी चला रही है। कुछ ही पहले विराज की तीर-सी कड़ी बात से उसके हृदय में जो घाव हो गया था,वह घाव अब आत्मग्लानि से भरने ही नहीं लगा बल्कि वह श्रद्धा और विस्मय के रूप में भी परिणित होने लगा। उसकी विराज आज ही की नहीं है, वह तो बहुत दिनों की—युग-युग की है। उसकी आलोचना केवल उसके दो-एक असहिष्णु व्यवहार से तो नहीं की जा सकती। उसके अलावा वह बात कोई नहीं जानता कि उसके हृदय में क्या है ?

नीलांबर की आँखों से आंसू गिरने लगे। मुँह ऊपर उठा कर और दोनों हाथ जोड़ कर वह सहसा भर्राई आवाज़ में कह उठा—"भगवान् मेरा सब कुछ ले लेना परन्तु मेरी विराज को मत लेना ?"

कहते-कहते सहसा उसकी इच्छा हुई कि अपनी प्रियतमा को छाती से चिपटा ले।

वह दौड़ा हुआ आया और विराज के कमरे के सामने खड़ा हो गया। दरवाजा अन्दर से बन्द था। धक्का देकर आवेग पूर्ण स्वर में उसने कहा—"विराज !"

जमीन पर औंधी पड़ी हुई विराज रो रही थी। चौंककर वह उठ बैठी।

नीलांबर ने कहा—"क्या कर रही हो,विराज ! दरवाजा खोलो।"

विराज डरती हुई दरवाजे के पास खड़ी हो गई।

नीलांबर ने अधीर होकर कहा—"विराज, खोलो न "

अबकी विराज ने भर्राई आवाज में कहा—"खोलो, मारोगे तो नहीं ?"

नीलांबर ने कहा—"मारूँगा !"

परन्तु, यह बात तेज छुरी की तरह उसके कलेजे में जा लगी।

कष्ट, लज्जा और अभिमान से उसका गला रुँध आया। दरवाजा पकड़ कर वह निर्जीव-सा खड़ा रहा। विराज यह सब नहीं देख रही थी। अनजान में ही घाव पर घाव करते हुए उसने कहा—"बोलो, मारोगे तो नहीं ?"

लड़खड़ाती जुबान से नीलाम्बर बस 'न' कह सका। डरते-डरते विराज ने जैसे दरवाजा खोला, नीलांबर लड़खड़ाता हुआ अन्दर घुस गया और आँखें बन्द कर पलंग पर जा पड़ा।

उसकी बन्द आँखों के कोनों से लगातार आँसू गिरने लगे। पति का ऐसा चेहरा उसने कभी नहीं देखा था। अब वह समझ गई। सिरहाने बैठ कर बड़े प्रेम और स्नेह से उसने अपने पति का सिर अपनी गोद में रख लिया और आँचल से उसकी आँखें पोंछने लगी।

संध्याकालीन अन्धकार घना होने लगा। किसी ने कुछ नहीं कहा। अंधेरे में पति-पत्नी दोनों चुपचाप पड़े रहे। उसके मन में जो-जो बातें आईं, उसे बस अन्तर्यामी ने ही सुना।

८

नीलांबर सोच रहा था कि विराज कैसे यह बात अपनी जुबान पर ला सकी ? उसके मन में कैसे यह बात आई कि वह उसे मार सकता है। एक गृहस्थी की तकलीफों की कोई सीमा नहीं थी और उस पर रोज-रोज यह होने लगा, दो दिन भी चैन से नहीं गुजरते। बात-बात में कलह और झगड़ा हो जाता। सब से बड़ी बात है कि उसकी विराज दिनों दिन कैसे बदलती जा रही है और चारों ओर देखने पर भी उसके दुःख की कोई सीमा दिखाई नहीं पड़ती। नीलांबर भाग्यवादी था और ईश्वर के श्री चरणों पर उसे बड़ी श्रद्धा थी। उसने मन में किसी को दोष नहीं दिया—कोई बुरी बात नहीं कही—और किसी की शिकायत नहीं की। चण्डी-मण्डप की दीवाल पर टँगे राधाकृष्ण की

सामने खड़ा होकर उसने रोते-रोते कहा—"अगर, दुःख ही देना था भगवन्, तो तुमने मुझे इतना निरुपाय क्यों बनाया ?"

उससे अधिक यह बात कोई नहीं जानता कि वह कितना निरुपाय है। न तो लिखना-पढ़ना सीखा और न कोई काम-धन्धा। सीखा था केवल दीन-दुखियों की सेवा करना और हरि-कीर्तन करना। दूसरों की तकलीफें इससे दूर जरूर होती थीं, किन्तु आज दुर्दिन में उसकी अपनी तकलीफ कैसे दूर हो ? अब तो उसके पास कुछ भी नहीं रह गया, सब कुछ चला गया। इन्हीं दुखों के कारण कितनी बार उसने सोचा है कि अब वह यहाँ नहीं रहेगा, विराज को लेकर कहीं चला जायगा। परन्तु, सात पुश्त के इस घर को छोड़कर किसी पेड़ के नीचे या किसी देव-मंदिर के सामने वह सुखी रह सकेगा ? यह छोटी-सी नदी, पेड़-पौधों से घिरा हुआ यह घर या घर-बाहर के इतने परिचित लोगों को छोड़कर कहीं और या स्वर्ग में भी क्या एक दिन जिन्दा रह सकेगा ? इसी घर में उसकी माँ मरी है, अपने पिता के अन्तिम समय में इसी चण्डीमण्डप के दालान में उसने उनकी सेवा की है, और उन्हें गंगा पहुँचाया है, यहीं उसने पूँटी को पाला-पोसा है और उसकी शादी की है। इस घर की, इस जगह की ममता वह कैसे छोड़ पाएगा।

वह उठ बैठा और दोनों हाथों से अपना मुँह ढक कर रोने लगा। और उसे क्या बस यही दुःख है ? अपनी प्यारी बहन को कहाँ दे आया कि उसकी खबर तक नहीं मिल पाती ! बहुत दिनों से वह अपनी बहिन को नहीं देख सका—और जोर से 'दादा' कहकर पुकारना भी नहीं सुन सका। दूसरे के घर वह कैसे है, यह भी नहीं जान सका। और विराज के आगे उसका नाम लेना भी गुनाह है ! उसे पाल-पोसकर भी वह उसे भुला पाई है, परन्तु वह कैसे भुलावे ? वह उसकी अपनी बहन है, उसे गोद में लेकर कन्धे पर चढ़ाकर बड़ा किया है। जहाँ कहीं भी गया, उसे साथ ले गया और इसके लिए उसे

कितना उपहास सहना पड़ा। वह पूंटी को रोती घर छोड़ कर एक पग भी आगे नहीं जा सका है। यह सब बातें बस वही जानता है और पूंटी जानती है। विराज जानकर भी अनजान है, कभी कुछ कहती नहीं। पूंटी के बारे में जैसे वह हमेशा के लिए एकदम प्रस्तर-मूर्ति-सी गूंगी बन गई है। यह बात नीलांबर के हृदय मे शूल-सी चुभती है कि उसकी निर्दोष बहिन को उसने दोषी समझ रक्खा है और इस मामले में कोई बात चलाना भी मुश्किल है। तुरन्त ही विराज उसे रोक कर कह उठती है—"रहने दो यह सब। वह राजरानी हो लेकिन, उसकी बातों की कोई जरूरत नहीं।" और 'राजरानी' शब्द वह कुछ इस तरह कह कर उठ जाती कि नीलांबर के दिल मे आग-सी लग जाती। मन-ही-मन वह व्याकुल हो उठता कि उस पर कहीं गुरुजनों का शाप न पड़े और उसका अकल्याण न हो। वह ईश्वर से प्रार्थना करता और छिपा कर प्रसाद चढ़ा कर नदी मे बहा आता। ऐसे ही दिन बीते जा रहे थे।

दुर्गा पूजा आ गई। अब उससे नही रहा गया। विराज से छिपा कर उसने कुछ रुपया इकट्ठा किया और एक धोती और मिठाई खरीद कर सुन्दरी को जा पकड़ा।

सुन्दरी ने बैठने के लिए आसन बिछा दिया और तम्बाकू चढ़ा लाई! आसन पर बैठ कर नीलांबर ने अपनी फटी-सी गन्दी धोती के भीतर से वह धोती निकाल कर कहा—"तुमने उसे जो पाला-पोसा है, सुन्दरी! उसे एक बार जाकर देख आओ।" इसके आगे वह कुछ भी नहीं कह सका, मुँह फेर कर चादर से आँखें पोंछ ली।

गाँव के सभी लोग उसकी तकलीफ की बात जानते थे। सुन्दरी ने पूछा—"वह कैसी है, बड़े बाबू?"

नीलांबर ने गर्दन हिलाकर कहा—"नहीं जानता।"

सुन्दरी होशियार थी। उसने और कोई सवाल नहीं पूछा दूसरे दिन सवेरे ही जाने के लिए राजी होगई। नीलाम्बर ने उसे कुछ राह-खर्च देना चाहा, परन्तु सुन्दरी ने नामन्जूर करते हुए कहा—'न

बाबू, तुमने धोती खरीद ली है वरन् यह भी मैं ही ले जाती। मैंने भी तो उसे पाला-पोसा है!"

नीलांबर मुँह फेर कर अपनी आँखें पोंछने लगा। किसी ने उसे ऐसी संवेदना नहीं दी। सभी कहते हैं कि उसने गलती की है, अन्याय किया है, पूंटी की वजह से ही उसका सर्वनाश हुआ है।

जाते समय नीलांबर ने सुन्दरी को इस बात की ताकीद कर दी कि उसकी तकलीफ की बातें पूंटी के कान में न पड़ें। नीलांबर के चले जाने के बाद सुन्दरी भी रो पड़ी। मन-ही-मन सभी इस आदमी को प्यार करते थे। सभी श्रद्धा रखते थे।

उस दिन विजयादशमी थी। तीसरे पहर विराज सोने के कमरे में गई और उसने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। शाम होते-होते 'चाचा' कहकर कोई घर में चला आया और कोई 'नीलू दा' 'नीलू भइया' कहकर बाहर से आवाज देने लगा।

नीलांबर उदास मुँह लिए चण्डीमण्डप से बाहर निकल आया। रस्म-रिवाज की तरह कोई गले मिला और किसी ने पैर छू कर प्रणाम किया। इसके बाद भाभी को प्रणाम करने के लिए सभी अन्दर चले। उनके साथ ही नीलांबर भी अन्दर आया और देखा कि विराज रसोईघर में भी नहीं है। सोने के कमरे का दरवाजा बन्द है। दरवाजे पर धक्का देकर पुकारा—"विराज, लड़के तुम्हें प्रणाम करने आए हैं।"

विराज ने अन्दर ही से कहा—"मुझे बुखार है, उठ नहीं सकती।"

सभी चले गए। थोड़ी देर बाद ही फिर किसी ने दरवाजे पर धक्का दिया। विराज कुछ बोली नहीं। दरवाजे के बाहर ही किसी ने धीरे-से कहा—"जीजी, मैं हूँ मोहिनी—दरवाजा खोलो।"

तो भी विराज चुप रही।

मोहिनी ने कहा—"यह नहीं होगा जीजी! रात भर भी अगर,

इस दरवाजे पर खड़ा रहना पड़ा तो मैं खड़ी रहूँगी, मगर बिना आशीर्वाद लिए यहाँ से नहीं हटूँगी।"

अबकी विराज ने दरवाजा खोल दिया और सामने आकर खड़ी हो गई। उसने देखा कि मोहिनी के बाएं हाथ में खाने की कोई चीज और दाहिने हाथ में छनी हुई भाँग है। मोहिनी ने दोनों चीजें उसके पैरों के पास रख दीं और चरण छूकर प्रणाम करके कहा—"मुझे बस यही आशार्वाद दो जीजी कि तुम्हारी जैसी हो सकूँ। इसके अलावा तुम से मैं और कोई आशीर्वाद नहीं चाहती।"

विराज ने सजल आँखों को आँचल से पोंछ कर छोटी बहू के माथे पर अपना हाथ रख दिया।

मोहिनी ने खड़े होकर कहा—"त्यौहार के दिन आँसू नहीं बहाना चाहिए जीजी, किन्तु तुमसे तो यह बात मैं नहीं कह सकती, अगर तुम्हारे शरीर की हवा भी मुझे स्पर्श कर गई हो तो उसी के जोर पर यह बात कहे जाती हूँ कि अगले साल ऐसे ही दिन को वह बात कहूँगी।"

मोहिनी के चले जाने पर विराज ने वह चीजें उठा कर अन्दर रख दीं और स्थिर होकर बैठ गई। आज वह और भी अच्छी तरह से यह बात समझ गई कि मोहिनी उसके लिए काफी चिन्तित रहती है।

इसके बाद कितने ही लड़के आए और गए मगर, विराज ने फिर दरवाजा बन्द नहीं किया। वे चीजें ही देकर आज की रस्म अदा की गई।

दूसरे दिन सवेरे थकी-सी वह बरामदे में बैठ कर साग काट रही थी कि सुन्दरी ने आकर प्रणाम किया।

विराज ने आशीर्वाद देकर बैठने को कहा।

बैठते ही सुन्दरी कहने लगी—"कल रात हो गई थी इसलिए सवेरे ही कहने चली आई। चाहे कुछ भी कहो परन्तु यदि पहले मुझे मालूम हुआ होता तो कभी नहीं गई होती।"

विराज कुछ भी नहीं समझ सकी, चुपचाप देखती रह गई।

सुन्दरी ने कहा—"घर में कोई नहीं है। सभी घूमने के लिए पच्छिम गए हैं, केवल एक बड़ी बुआ है। उसकी वह खरी-खोटी बातें क्या बताऊँ तुम्हें! बोली—'लौटा ले जा। दामाद तक के लिए एक धोती नहीं भेजी। बस एक सूती धोती लेकर पूजा की रस्म अदा करने आई हो, इसके बाद नीच, चमार बेहया सब कुछ कह डाला।"

विराज ने चकित होकर कहा—"किसने किसको क्या कहा रे?"

सुन्दरी ने कहा—"और किसको, हमारे बड़े बाबू को।"

विराज अधीर हो गई। उसे कुछ मालूम नहीं था, इसी से वह कुछ समझ न पाई। उसने कहा—"किसने कहा, यह तो बताओ!"

अब की सुन्दरी कुछ विस्मित हुई। कहा—"वही तो बतला रही हूँ बहू। पूँटी की फुफिया सास इतनी घमण्डी है कि धोती नहीं, लौटा दी उसने।" कह कर उसने वह धोती आँचल से बाहर कर रख दी।

अब विराज समझ गई। एकटक वह उस धोती की ओर देखती रह गई और जल-भुन गई।

नीलांबर बाहर गया था। कुछ तय नहीं था कि कब वह लौटेगा। सुन्दरी चली गई।

एक दोपहर को नीलाम्बर खाना खाने बैठा था। विराज ने उसके सामने वह धोती रखकर कहा—"सुन्दरी लौटा गई है।"

सिर उठाकर देखते ही नीलाम्बर एकदम डर गया। उसने सोचा भी नहीं था कि यह विराज भी जान जायगी। बिना कुछ पूछे ही उसने चुपचाप सिर झुका लिया।

विराज ने कहा—"सुन्दरी से जाकर सुन लेना कि उन लोगों ने क्या गालियाँ दीं और इसे लौटा दिया।"

फिर भी नीलांबर चुपचाप सिर झुकाए रहा। विराज भी चुप रही।

नीलाम्बर की भूख-प्यास बिल्कुल ही जाती रही। सिर झुकाए वह यही महसूस कर रहा था कि विराज एकटक उसकी ओर देख रही है और उसकी आँखों से जैसे आग बरस रही है।

शाम को नीलांबर सुन्दरी के घर गया और बार-बार पूछ कर सब बातें सुनीं। फिर कहा—"जब वे पछाँह घूमने गए हैं तो अवश्य ही बड़े मजे में होंगे, क्यों सुन्दरी?"

सुन्दरी ने सिर हिलाकर कहा—"मजे में तो हैं ही, बाबूजी!"

नीलांबर का चेहरा खिल गया, कहा—"तुमने देखा, कितनी बड़ी हुई है?"

सुन्दरी ने हँसते हुए कहा—"भेंट तो हुई नहीं बाबूजी।"

नीलाम्बर लज्जित हो गया। कहा—"ठीक है, मगर नौकर-चाकरों से तो सुना होगा!"

सुन्दरी ने कहा—"पूछती क्या बाबू? उस मरी फुफिया सास ने जो जली-कटी सुनाई—और वो हाथ-मुँह मटकाए कि भागने को भी राह नहीं मिली!"

नीलांबर क्षुब्ध हो गया। क्षणभर रुक कर पूछा—"अच्छा, मेरी पूँटी पहले से कुछ मोटी-ताजी हुई? तुझे कैसे लगता है?"

जवाब देते-देते सुन्दरी थक-सी गई थी। थोड़े में कह दिया, "मोटी ही हुई होगी।"

नीलांबर ने उत्सुक होकर पूछा, "सुना होगा किसी से, क्यों!"

सुन्दरी ने गरदन हिलाकर कहा—"सुना तो कुछ भी नहीं, बाबूजी!"

"तो जाना कैसे?"

सुन्दरी चिढ़ गई, कहा—"जाना कहाँ से? तुमने पूछा, कैसी होगी!" मैंने कह दिया—"मोटी।"

नीलांवर ने सिर झुकाकर धीरे-से कहा—"ठीक है।"

इसके वाद क्षणभर सुन्दरी की ओर वह चुपचाप देखता रहा, फिर एक लम्वी सांस खींचकर उठ गया। कहा—"अच्छा, अब चलूँ फिर किसी दिन आऊँगा।"

सुन्दरी ने चैन की सांस ली। दरअसल, उसकी कोई गलती नहीं थी। एक तो कुछ कहने को था नहीं, दूसरे एक ही वात वार-वार पूछने पर भी नीलांवर को चैन नहीं मिलता था।

उसने जल्दी से कहा—"हाँ, वावू रात हो आई, अव जाओ। फिर किसी दिन सवेरे ही आना तव सव वातें होंगी।"

इतनी देर वाद नीलांवर का ध्यान सुन्दरी की घवराहट पर गया और 'जाता हूँ' कहकर वह चल दिया।

सुन्दरी की घवराहट का एक खास कारण था।

उस मोहल्ले के निताई गांगुली अक्सर इसी वेला उसकी याद करके पदधूलि दे जाते थे। मालिक के सामने ही कहीं वे चरण यहां न आ जांय, इसी से वह डर रही थी। कई वजहों से उसका भाग्य चमक गया था और जमींदार के विशेष अनुग्रह के कारण उसकी लाज गर्व में वदल गई थी फिर भी इस निष्कलङ्क साधु-चरित्र ब्राह्मण के सामने अपनी हीनता प्रकट हो जाने के डर से वह मारे लाज के मरी जा रही थी।

नीलांवर के चले जाने पर प्रसन्नतापूर्वक वह दरवाजा वन्द करने आई कि देखा नीलाम्वर लौटा आ रहा है। मन-ही-मन खीजकर दरवाजा पकड़कर वह वहीं खड़ी हो गई। द्वादशी के चाँद की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही थी।

नीलांवर नजदीक आकर कुछ हिचकिचाया फिर चादर के खूँट से एक अठन्नी निकाल कर सलज्ज भाव से कहा—"तुझसे क्या छिपा है सुन्दरी, तू तो सव कुछ जानती है। वस, यह अठन्नी है, ले लो।" कह कर उसने हाथ वढ़ाया। सुन्दरी जीभ काट कर पीछे हट गई।

नीलांबर ने कहा—"तुझे बहुत तकलीफ दी, आने-जाने का खर्च भी नहीं दे सका।" इसके आगे वह कुछ न कह सका। गला रुंध आया।

सुन्दरी ने क्षणभर कुछ सोच कर अपना हाथ आगे बढ़ा कर कहा—"आप मेरे मालिक हैं, दे दीजिए। मेरा 'न' कहना शोभा नहीं देता।"

अठन्नी लेकर उसे माथे से स्पर्श करके आँचल में बांधते हुए कहा—"तो आप जरा अन्दर आइए।" यह कर वह अन्दर चली गई। नीलांबर आकर आँगन में खड़ा रहा।

सुन्दरी तुरन्त ही लौट आई और नीलांबर के चरणों के पास मुट्ठी भर रुपया रखकर प्रणाम किया और पद-धूलि माथे से लगा कर खड़ी हो गई।

नीलांबर विस्मय से हतबुद्धि-सा खड़ा रह गया। सुन्दरी ने हँसते हुए कहा—"इस तरह खड़े होकर देखने से तो काम नहीं चलेगा, बाबू! मैं आपकी हमेशा की दासी हूँ। शूद्र होने पर भी यह जोर केवल मेरा ही है।"

यह कहकर उसने झुककर रुपए उठा लिए और नीलाम्बर की चादर मे बाधती हुई मधुर स्वर में बोली—"आप ही के दिए हुए ये रुपए हैं, बाबूजी! तीर्थ-यात्रा के समय देवता के नाम इन्हें अलग रख दिया था, जा नहीं सकी तो देवता खुद ही आकर आज ले गए।"

अब भी नीलाम्बर कुछ कह नहीं सका। अच्छी तरह बाँध कर सुन्दरी ने कहा—"अब आप जाइए, बहूजी घर में अकेली हैं लेकिन, देखिए, यह बात बहूजी किसी तरह न जान सकें।"

नीलांबर कुछ कहना ही चाहता था कि सुन्दरी ने कहा—"कुछ भी कहिए, मैं कुछ नहीं सुनने की। आज अगर आप मेरा मान न रखेंगे तो सच मानिए, मैं सिर पटक-पटक कर जान दे दूंगी।"

चादर का कोना अभी तक सुन्दरी के ही हाथ

हो रहा है, जी ?" कहकर निताई गांगुली खुले दरवाजे से सीधे आँगन में आकर खड़े हो गए। सुन्दरी ने चादर छोड़ दिया और नीलाम्बर बाहर चला गया।

निताई छणभर मुँह बाए खड़ा रहा। कहा—"यह छोकरा तो नीलू था न ?"

सुन्दरी को कुछ गुस्सा आया, परन्तु उसने सहज स्वर से कहा—"हाँ, मेरे मालिक थे।"

निताई ने कहा—"सुना है, घर में खाने को भी नहीं है और इतनी रात को इसे यहाँ देखता हूँ।"

"काम से आए थे।"

"अहा, काम से ?" कह कर निताई होठ दबा कर मुस्कराया मानों उनके जैसे अनुभवी आदमियों की आँखों में धूल झोंकना आसान नहीं।

सुन्दरी उस मुस्कराहट का मतलब समझ गई। निताई की उम्र पचास के ऊपर ही थी। सिर के बारह आने बाल पक गए थे। क्लीन शेव, सिर पर मोटी-सी चुटिया थी। माथे पर लगा हुआ सवेरे का चन्दन अभी तक ज्यों-का-त्यों था। सुन्दरी ने उन्हें गौर से देखा। उस दृष्टि का मतलब निताई नहीं समझ सकते थे। इसी से वे कुछ उत्तेजित होकर कह उठे—"इस तरह क्या देख रही हो ?"

"देख रही हूँ कि तुम भी ब्राह्मण हो और जो चले गए, वे भी ब्राह्मण हैं, परन्तु दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है !"

कुछ समझ न सकने के कारण निताई ने पूछा, "अन्तर कैसा ?"

सुन्दरी ने मुस्कराते हुए कहा—"बुड्ढे हो, ओस में मत खड़े रहो, ऊपर आकर दालान में बैठ जाओ। कसम खाकर कहती हूँ गांगुली महाशय, कि मेरे मालिक की पदधूलि पाकर तुम जैसे कितने ही गांगुली तर जांय।"

निताई क्रोध और विस्मय से देखते रह गए, उनकी जबान से कोई बात नहीं निकली। सुन्दरी ने तम्बाकू चढ़ाते-चढ़ाते सहज-स्वर में कहा—"मैंने सच ही कहा है ब्राह्मण देवता, नाराज मत होना। हमेशा से ही मैं देखती आ रही हूँ। मालिक के जनेऊ की ओर देखने पर लगता है जैसे मालिक के गले से बिजली कौंध रही है। जरा अपना जनेऊ तो देखो, देखकर हँसी आती है।" कहते-कहते वह ठट्ठाकर हँस पड़ी। निताई पहले से ही डाह के कारण जल रहा था, अब क्रोध के कारण पागल-सा हो गया। चिल्लाकर कहा—"इतना घमण्ड मत कर सुन्दरी, मुँह सड़ जायगा!"

चिलम फूंकते-फूंकते सुन्दरी नजदीक आई और हँसकर कहा—"कुछ नहीं होगा, लो, तम्बाकू पीओ। मरने पर तुम्हीं लोगों का मुँह नहीं जलेगा जो मेरे दुःखी मालिक को देखकर हँसते हो।"

हुक्का फेंककर निताई उठ खड़ा हुआ। सुन्दरी ने उनके दुपट्टे का एक छोर पकड़ लिया और हँसते हुए कहा—"तुम्हें मेरे सिर की कसम, बैठ जाओ।" निताई गुस्से में अपना दुपट्टा खींचने-छुड़ाने लगे और 'चूल्हे में जा, भाड़ में जा, तेरा सर्वनाश हो जाय, इत्यादि शाप देते हुए जल्दी से चले गए।

सुन्दरी वहीं बैठ गई और थोड़ी देर तक खूब हँसती रही। फिर गई और सदर दरवाजा बन्द कर धीरे-धीरे कहने लगी—"कहाँ वे और कहाँ यह! इसे कहते हैं ब्राह्मण! इतनी तकलीफ में भी चेहरा हमेशा प्रफुल्लित रहता है फिर भी, आँख उठाकर देखने की हिम्मत नहीं होती। लगता है जैसे आग जल रही हो।"

६

किसी तरह यह बात उल्टी-सीधी होकर विराज के कानों तक पहुँच ही गई। उस घर की बुआ उस दिन आलोचना करने आई थी। विराज ने जब सबकुछ गौर से सुना, फिर भी गम्भीर स्वर में कहा—

"उनका एक कान काट लेना चाहिये था बुआ!"

बुआ बिगड़कर जाने लगी—"जानती हूँ, ऐसी बातूनी और इस गाँव में दूसरी नहीं।"

विराज ने पति को बुलाकर कहा—"सुन्दरी के यहाँ कब गए थे?"

नीलाम्बर ने डरते-डरते जवाब दिया—"बहुत दिन हुए पूँटी का समाचार पूछने गया था।"

"अब मत जाना। सुनती हूँ, उसका चरित्र बहुत भ्रष्ट हो गया है।" यह कह कर वह अपने काम से चली गई। इसके बाद कई दिन बीत गए। सूर्यदेव रोज ही उदय और अस्त होते हैं। उन्हें रोक रखने का कोई उपाय न होने के कारण ही जाड़ा गया और गर्मी भी अब जाने ही वाली है। विराज की गम्भीरता दिनों-दिन बढ़ती ही गई। उसकी नजर थकी-सी मगर, तेज होने लगी। उसकी ओर देखने वालों की आँखें जैसे अपने आप ही झुक जातीं। बर्छे से बेध कर मारा जाने वाला नाग बार-बार बर्छे को ही डसता है और अन्त में थककर जैसे उसकी ओर देखता रह जाता है। ठीक वैसे ही विराज की आँखें दयनीय, परन्तु भयानक हो गई थीं। पति के साथ बातचीत होती ही नहीं। वह जैसे देखती ही नहीं कि कब वह छिपे-छिपे आता है और कब जाता है।

छोटी वहू के अलावा, सभी उससे डरते हैं। काम काज से छूटते ही वह आकर उपद्रव कर जाया करती है। विराज ने शुरू में उससे वचने का वहुत उपाय किया, मगर सफल नही हो सकी। आंखें तरेरने पर वह गले से लग जाती है और कडी बातें कहने पर पांवों से।

उस दिन विजया दशमी थी। तड़के ही छोटी वहू छिपकर आई और कहा—"चलो न जीजी, नदी में जरा डुबकी लगा आएं, अभी कोई जगा नहीं है।"

जव से उस पार जमींदार का घाट वना, उसे नदी पर जाने की मनाही थी।

देवरानी-जेठानी नहाने गईं। नहाकर वाहर निकलते ही देखा, कुछ दूर पर जमीदार राजेन्द्रकुमार खड़ा है। अव भी अन्धेरा दूर नहीं हुआ था, फिर भी दोनों ने उसे पहचान लिया। मारे डर के छोटी वहू सिटपिटा गई और विराज के पीछे खड़ी हो गई। विराज को वड़ा आश्चर्य हुआ। इतने सवेरे यह आदमी आया कैसे ? तुरन्त ही उसके मन में आया कि शायद रोज ही यह पहरा देता होगा ! विराज ने कहा—"खड़ी मत रह, छोटी वहू चली आ।"

तेज चाल से उसे दरवाजे तक पहुंचाकर विराज सहसा रुक गई। इसके वाद धीमी चाल से जाकर राजेन्द्र से कुछ दूरी पर जाकर खड़ी हो गई। धुंधली रोशनी में उसकी जलती आँखों की दृष्टि राजेन्द्र सह न सका। उसका सिर नीचा हो गया।

विराज ने कहा—"आप वड़े आदमी के लड़के हैं। आपकी यह कैसी आदत है ?"

राजेन्द्र अप्रतिभ हो गया। कुछ जवाव न दे सका।

विराज कहने लगी—"आपकी जमींदारी चाहे जितनी वड़ी हो मगर आप जहाँ खड़े हैं—वह मेरी है।" फिर पार के घाट की ओर इशारा करते हुए कहा—"आप कितने नीच हैं, यह घाट की एक-एक ईंट जानती है और मैं जानती हूं। शायद आपके कोई

९

किसी तरह यह बात उल्टी-सीधी होकर विराज के कानों तक पहुँच ही गई। उस घर की बुआ उस दिन आलोचना करने आई थी। विराज ने जब सबकुछ गौर से सुना, फिर भी गम्भीर स्वर में कहा—

"उनका एक कान काट लेना चाहिये था बुआ!"

बुआ बिगड़कर जाने लगी—"जानती हूँ, ऐसी बातूनी और इस गाँव में दूसरी नहीं।"

विराज ने पति को बुलाकर कहा—"सुन्दरी के यहाँ कब गए थे?"

नीलाम्बर ने डरते-डरते जवाब दिया—"बहुत दिन हुए पूँटी का समाचार पूछने गया था।"

"अब मत जाना। सुनती हूँ, उसका चरित्र बहुत भ्रष्ट हो गया है।" यह कह कर वह अपने काम से चली गई। इसके बाद कई दिन बीत गए। सूर्यदेव रोज ही उदय और अस्त होते हैं। उन्हें रोक रखने का कोई उपाय न होने के कारण ही जाड़ा गया और गर्मी भी अब जाने ही वाली है। विराज की गम्भीरता दिनों-दिन बढ़ती ही गई। उसकी नजर थकी-सी मगर, तेज होने लगी। उसकी ओर देखने वालों की आँखें जैसे अपने आप ही झुक जातीं। बर्छे से बेध कर मारा जाने वाला नाग बार-बार बर्छे को ही डसता है और अन्त में थककर जैसे उसकी ओर देखता रह जाता है। ठीक वैसे ही विराज की आँखें दयनीय, परन्तु भयानक हो गई थीं। पति के साथ बातचीत होती ही नहीं। वह जैसे देखती ही नहीं कि कब वह छिपे-छिपे आता है और कब जाता है।

छोटी बहू के अलावा, सभी उससे डरते हैं। काम काज से छूटते ही वह आकर उपद्रव कर जाया करती है। विराज ने शुरू में उससे बचने का बहुत उपाय किया, मगर सफल नही हो सकी। आँखे तरेरने पर वह गले से लग जाती है और कड़ी बातें कहने पर पाँवों से।

उस दिन विजया दशमी थी। तड़के ही छोटी बहू छिपकर आई और कहा—"चलो न जीजी, नदी में जरा डुबकी लगा आएँ, अभी कोई जगा नहीं है।"

जब से उस पार जमींदार का घाट बना, उसे नदी पर जाने को मनाही थी।

देवरानी-जेठानी नहाने गई। नहाकर बाहर निकलते ही देखा, कुछ दूर पर जमीदार राजेन्द्रकुमार खड़ा है। अब भी अन्धेरा दूर नही हुआ था, फिर भी दोनों ने उसे पहचान लिया। मारे डर के छोटी बहू *सिटपिटा गई और विराज के पीछे खड़ी हो गई। विराज को बड़ा* आश्चर्य हुआ। इतने सवेरे यह आदमी आया कैसे ? तुरन्त ही उसके मन में आया कि शायद रोज ही यह पहरा देता होगा ! विराज ने कहा—"खड़ी मत रह, छोटी बहू चली आ।"

तेज चाल से उसे दरवाजे तक पहुँचाकर विराज सहसा रुक गई। इसके बाद धीमी चाल से जाकर राजेन्द्र से कुछ दूरी पर जाकर खड़ी हो गई। धुँधली रोशनी मे उसकी जलती आँखों की दृष्टि राजेन्द्र सह न सका। उसका सिर नीचा हो गया।

विराज ने कहा—"आप बड़े आदमी के लड़के हैं। आपकी यह कैसी आदत है ?"

राजेन्द्र अप्रतिभ हो गया। कुछ जवाब न दे सका।

विराज कहने लगी—"आपकी जमींदारी चाहे जित हो मगर आप जहाँ खडे हैं—वह मेरी है।" फिर पार ओर इशारा करते हुए कहा—"आप कितने नीच हैं, एक-एक ईंट जानती है और मैं जानती हूँ। शायद आपके

नहीं है। वहुत दिनों पहले, अपनी दासी से मैंने यहाँ आने के लिए मना करा दिया था, वह नहीं सुना ?"

इतने पर भी राजेन्द्र कुछ वोल न सका।

विराज ने कहा—"आप मेरे पति को नहीं जानते। अगर जानते होते तो कभी यहाँ नहीं आते। आज कहे देती हूँ कि फिर यहाँ आने के पहले आप उन्हें जानने की कोशिश कीजिएगा।" यह कहकर विराज धीरे-धीरे चली गई। वह घर के अन्दर जा रही थी कि देखा पीताम्वर एक गड़ुआ लिए खड़ा है।

वहुत दिनों से दोनों में वोल-चाल नहीं थी तो भी उसने पुकार कर कहा—"अभी-अभी तुम किससे वातें कर रही थीं भाभी, वह तो वही जमींदार वावू हैं ?"

विराज का चेहरा तमतमा गया। आँखें लाल हो गईं। 'हाँ' कहकर वह अन्दर चली गई।

अन्दर जाकर वह अपनी वात को भूल गई, लेकिन छोटी वहू के लए मन-ही-मन उद्विग्न हो गई। उसे आशङ्का हुई कि छोटे लाला ने उसे देख लिया है। दस मिनट वाद ही उस घर से मारपीट और दर्द-भरी रुलाहट सुनाई पड़ी।

विराज दौड़कर रसोईघर में चली गई और काठ की मूर्ति-सी वैठी रही।

अभी-अभी चारपाई छोड़कर नीलाम्वर वाहर आकर हाथ-मुंह धो रहा था। पीताम्वर का गरजना क्षणभर वह ध्यान से सुनता रहा। इसके वाद झपट कर वेड़े के पास गया और लात मारकर उसे तोड़कर उस घर में जा खड़ा हुआ।

वेड़े के टूटने की आवाज सुनकर पीताम्वर ने सिर उठाया तो सामने यमराज से भाई को खड़ा देखकर स्थिर हो गया।

जमीन पर पड़ी हुई छोटी वहू को लक्ष कर नीलांवर ने कहा—"अन्दर चली जा वेटी, कोई हरज नहीं।"

बहू कांपती हुई अन्दर चली गई। तब नीलाम्बर ने सहज स्वर में कहा—"बहू के सामने मैं तेरा अपमान नहीं करूँगा मगर, यह कभी मत भूलना कि जब तक मैं इस घर में हूँ तब तक यह सब नहीं चलने का। उस पर जो हाथ उठाया तो उसे तोड़ डालूँगा।" यह कहकर वह लौट रहा ही था कि पीतांबर ने साहस बटोर कर कहा—"घर में घढ़ कर मारने तो आगए किन्तु, वजह भी जानते हो ?"

नीलांबर घूमकर खड़ा हो गया और कहा—"नहीं, और जानना भी नहीं चाहता।"

पीतांबर ने कहा—"हाँ, भला, तुम क्यों जानना चाहोगे ? लगता है, घर छोड़कर मुझे भागना ही पड़ेगा।"

क्षणभर उसकी ओर देखते रहने के बाद नीलांबर ने कहा—"यह मुझ मालूम है कि घर छोड़कर किसे भागना पड़ेगा, तुम्हें याद कराना नहीं पड़ेगा लेकिन तुम्हें यह बतलाए जाता हूँ कि जब तक वह नहीं होता, तब तक तुम्हें सब्र करके रहना ही पड़ेगा।"

यह कहकर नीलांबर लौट ही रहा था कि पीतांबर सामने आकर खड़ा हो गया। कहा—"तो तुम्हें भी बतला देता हूँ दादा, कि दूसरे के घर का शासन सँभालने के पहले अपने घर का शासन सँभालना अच्छा होता है।"

नीलांबर देखता ही रह गया। पीतांबर ने साहस पाकर कहा—"जानते तो हो कि उस पार का घाट किसका है। तभी से मैंने छोटी बहू को नदी जाने की मनाही कर दी थी। आज तड़के ही भाभी के साथ वह नहाने गई थी। कौन जाने, इस तरह रोज ही वह जाती हो !"

नीलांबर ने विस्मित होकर कहा—"इतनी-सी बात पर तुमने हाथ उठा दिया ?"

पीतांबर ने कहा—"पहले सुनो तो सही। वह जमींदार क

सहसा रुक गया। पीताम्बर की ओर देखते हुए कहा—"तू जानवर है, मगर छोटा भाई ठहरा। बड़ा भाई होकर मैं तुम्हें शाप नहीं दूंगा, क्षमा करता हूँ। मगर, अपने गुरुजन के लिए आज तुमने जो कुछ कहा, भगवान उसके लिए तुम्हें क्षमा नहीं करेंगे।" कह कर वह धीरे से अपने घर की ओर आ गया और टूटे हुए बेड़े की मूद अपने हाथ से ही बाँधने लगा।

विराज ने सब कुछ सुना। लज्जा और घृणा से वह बार-बार सिर से पाँव तक काँप गई। एक बार उसके जी में आया कि सामने जाकर अपनी सभी बातें कह दे, परन्तु उसके पैर नहीं उठे। पति के सामने कैसे वह अपने मुँह से यह बात कहे कि उसके रूप पर एक दूसरे पुरुष की ललचाई आँखें पड़ी हैं।

बेड़ा बाँधकर नीलाम्बर बाहर चला गया।

दोपहर को थाली परोस कर विराज आड़ में बैठी रही। रात को पति के सो जाने पर चुपके से आकर पति के बिछौने पर सो गई और सबेरे उसके उठने के पहले ही बाहर निकल गई।

ऐसे ही नजर बचाते जब दो दिन बीत गए और नीलाबर ने कुछ नहीं पूछा तो उसके मन में एक और शङ्का होने लगी। पत्नी की इतनी बड़ी बदनामी की बात में भी पति को कोई उत्सुकता नहीं हो, इसकी ठीक वजह उसे ढूँढ़े भी नहीं मिली। इस सम्भावना से भी विराज को सान्त्वना नहीं मिली कि इस घटना से वह विस्मित हुआ है। एक तरफ तो उसने इन दो दिनों को नजर बचा कर बिताया है और दूसरी तरफ हर घड़ी उसे आशा लगी रही कि कब बात चलेगी और कब वे उसे बुलाकर सभी बातें जानना चाहेंगे। जब तक अपने पति के चरण के नीचे बैठकर सब कुछ वह कह न देगी, तब तक उसके सिर का नहीं हटेगा और उसकी बेचैनी दूर नहीं होगी। मगर, यह सब तो हुआ नहीं। नीलाबर चुप रहा।

विराज ने एक वार यह भी सोचने की कोशिश की कि हो सकता है कि पति को इस पर विश्वास ही नहीं हुआ है। मगर, फिर उसने सोचा कि अपने आप को इस तरह पति से विलकुल छिपाने से क्या उन्हें सन्देह नहीं होगा। मगर जिस वात को वह इतने दिनों से छिपाती आई है, उसे खुद ही जाकर कैसे कहे ? वे दो दिन ऐसे ही वीते। दूसरे दिन सवेरे विराज डरी हुई और घवड़ाई हुई घर का काम कर रही थी। सहसा उसके अन्तंतम को मथ कर यह वात वाहर निकल आई कि कहीं लालाजी की वातों पर उन्हें विश्वास हो गया हो तो।

पूजा-पाठ करके नीलांवर उठने ही वाला था कि विराज आंधी की तरह वहां गई और हाँफने लगी।

नीलांवर ने विस्मित होकर सिर उठाया ही था कि विराज जोर से होंठ भींचकर कह उठी—"वतलाओ, मैंने क्या किया है, मुझसे वोलते क्यों नहीं ?"

नीलांवर हँस पड़ा। कहा—"तुम तो भागती फिरती हो, वतलाओ वात किससे करूँ ?"

"भागती-फिरती हूं तुम क्या एक वार वुला नहीं सकते थे ?"

नीलांवर ने कहा—"जो आदमी भागता फिरे, उसे वुलाना पाप है।"

पाप है ? तो यह कहो कि तुमने लालाजी की वातों पर विश्वास कर लिया है।"

और क्रोध एवं दुःख से विराज रो पड़ी। भर्राई आवाज में चिल्ला कर कहा—"वह विलकुल झूठ है, तुमने क्यों विश्वास किया ?"

"नदी किनारे तुमने वात नहीं की थी ?"

विराज ने उदण्डतापूर्वक कहा—"हाँ, की थी।"

नीलांवर ने कहा—"तो मैंने इतने ही पर विश्वास किया।"

विराज ने हथेली से आँखें पोंछते हुए कहा—"अगर विश्वास ही कर लिया है तो उसी नीच की तरह मुझे दण्ड क्यों नहीं दिया ?"

नीलांबर फिर हँस पड़ा। नवविकसित पुष्प की-सी उसकी निर्मल उज्ज्वल हंसी से उसका मुखमण्डल उद्भासित हो गया। दाहिना हाथ उठा कर कहा—"अच्छा तो नजदीक आओ, बचपन की तरह एक बार फिर कान मल दूँ।"

तुरन्त ही विराज सामने जाकर घुटनों के बल बैठ गई और निर्जीव-सी उसकी छाती पर गिरकर अपने दोनों हाथ उसके गले में डालकर फूट-फूट कर रोने लगी।

नीलांबर चुप रहा। उसकी आँखें डबडबा आईं। पत्नी के माथे पर अपना दाहिना हाथ रख कर वह मन-ही-मन आशीर्वाद देने लगा। कुछ देर बाद रुलाहट का वेग जब कुछ कम हुआ तो विराज ने उसी तरह पड़े-पड़े कहा—"जानते हो, उससे मैंने क्या कहा था?"

नीलांबर ने स्नेहपूर्वक मधुर स्वर में कहा—"जानता हूँ, उसे आने से रोक दिया है।"

"तुमसे किसने कहा?"

नीलांबर ने हँस कर कहा—"कहा किसी ने नहीं। लेकिन यह मैं जानता हूँ कि एक अपरचित आदमी से बात की है तो बड़े दुःख मे पड़कर ही, इसके अलावा वह बात और क्या हो सकती है?"

विराज की आँखों से आँसू गिरने लगे।

नीलांबर कहने लगा—"लेकिन, काम अच्छा नहीं किया, मुझे बता दिया होता, तो मैं ही जाकर समझा देता। बहुत दिनों पहले ही उसके मन का भाव मैं ताड़ गया था। कई दिन सुबह-शाम उसे देखा भी। मगर तुमने मना कर दिया था। इसी से कभी कुछ कहा नहीं।"

उसी दिन शाम से ही आकाश मे बादल छाए हुए थे और बूँदा-बूँदी हो रही थी। रात मे पति-पत्नी मे फिर उस बात की चर्चा चली।

नीलांबर बोला—"आज दिन भर मैं उसका इन्तजार करता रहा।"

विराज डर गई—"क्यों ? किस लिए ?"

"इसलिए कि दो बातें कहे बिना ईश्वर के सामने अपराधी बनना पड़ेगा।"

भय और उत्तेजना से विराज उठ बैठी। कहा—"न, यह किसी तरह नहीं होगा। इस बात को लेकर तुम उससे एक शब्द भी नहीं कह सकते।"

उसके चेहरे और आंखों के भाव से नीलांबर को बहुत विस्मय हुआ। कहा—"मैं तुम्हारा पति हूं। मेरा यह कर्त्तव्य नहीं है ?"

बिना कुछ सोचे-समझे ही विराज कह गई—"पहले पति के और कर्त्तव्य करो, तब यह करना।"

"क्या ?" कहकर नीलांबर स्तम्भित-सा हो गया। फिर "अच्छा" कहकर एक निःश्वास छोड़कर करवट बदल कर चुप हो रहा।

वैसे ही पड़ी-पड़ी विराज स्थिर होकर यह सोचने लगी कि आज यह कैसी बात उसके मुंह से निकल गई।

बाहर वर्षा की बूंदों के गिरने का धीमा शब्द होने लगा। खुली हुई खिड़की से मिट्टी की सोंधी सुहावनी गन्ध अन्दर आने लगी। अन्दर पति-पत्नी स्तब्ध पड़े रहे।

बड़ी देर बाद नीलांबर ने अत्यन्त दुखित स्वर में—जैसे अपने आप ही कह रहा हो, कहा—"मैं कितना निकम्मा हूं विराज, यह जैसे तुमसे सीखा वैसे और किसी से नहीं।"

विराज कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसके कण्ठ से कोई आवाज ही नहीं निकली। बहुत दिनों बाद आज इस अत्यन्त दुखित दम्पति के बीच सन्धि का सूत्रपात होते ही वह फिर छिन्न-भिन्न हो गया।

दोपहर को कहीं किसी को न देखकर छोटी बहू रोती हुई आई और विराज के पैरों पर गिर पड़ी। पति ने जो गलती की थी, उसके डर से व्याकुल होकर दो दिनों से वह इसी मौके की ताक में थी। रोकर कहा—"उन्हें शाप मत देना जीजी, मेरी ओर देखकर क्षमा कर दो। उन्हें अगर कुछ हो गया तो मैं जीऊँगी नहीं।"

हाथ पकड़ कर उसे उठाते हुए विराज ने गम्भीर स्वर में कहा—"मैं शाप नहीं दूँगी बहिन ? उनमें इतनी शक्ति भी नहीं है कि मेरा कुछ बिगाड़ सकें। लेकिन तुम जैसी सती लक्ष्मी पर बिना किसी अपराध के हाथ उठाना दुर्गा मइया नहीं सहन करेंगी।"

मोहिनी काँप गई। आँसू पोंछती हुई बोली—"क्या करूँ जीजी, उनकी आदत ही ऐसी है। जिन देवता ने उन्हें इतना क्रोधी बनाया है, वे क्षमा करेंगे। फिर भी कोई ऐसा देवी-देवता नहीं है जिसकी मैंने मनौती न मानी हो। किन्तु मैं पापिन हूँ, किसी ने मेरी पुकार नहीं सुनी। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जीजी...।" कहते-कहते वह सहसा रुक गई।

अभी तक विराज ने नहीं देखा था कि छोटी बहू की दाहिनी कनपटी पर तिरछा-सा एक गहरा काला दाग पड़ा है। सहमते हुए उसने पूछा—"तेरे माथे पर यह क्या मार का निशान है ?"

छोटी बहू ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया और गरदन हिलाई।

विराज ने पूछा—"किस चीज से मारा था ?"

पति के व्यवहार से लज्जित छोटी बहू सिर नहीं उठा सकी। वैसे ही उसने धीरे-से कहा—"गुस्सा होने पर वे पागल हो जाते हैं जीजी !"

विराज डर गई—"क्यों ? किस लिए ?"

"इसलिए कि दो बातें कहे बिना ईश्वर के सामने अपराधी बनना पड़ेगा।"

भय और उत्तेजना से विराज उठ बैठी। कहा—"न, यह किसी तरह नहीं होगा। इस बात को लेकर तुम उससे एक शब्द भी नहीं कह सकते।"

उसके चेहरे और आँखों के भाव से नीलांबर को बहुत विस्मय हुआ। कहा—"मैं तुम्हारा पति हूँ। मेरा यह कर्त्तव्य नहीं है ?"

बिना कुछ सोचे-समझे ही विराज कह गई—"पहले पति के और कर्त्तव्य करो, तब यह करना।"

"क्या ?" कहकर नीलांबर स्तम्भित-सा हो गया। फिर "अच्छा" कहकर एक निःश्वास छोड़कर करवट बदल कर चुप हो रहा।

वैसे ही पड़ी-पड़ी विराज स्थिर होकर यह सोचने लगी कि आज यह कैसी बात उसके मुँह से निकल गई।

बाहर वर्षा की बूँदों के गिरने का धीमा शब्द होने लगा। खुली हुई खिड़की से मिट्टी की सोंधी सुहावनी गन्ध अन्दर आने लगी। अन्दर पति-पत्नी स्तब्ध पड़े रहे।

बड़ी देर बाद नीलांबर ने अत्यन्त दुखित स्वर में—जैसे अपने आप ही कह रहा हो, कहा—"मैं कितना निकम्मा हूँ विराज, यह जैसे तुमसे सीखा वैसे और किसी से नहीं।"

विराज कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसके कण्ठ से कोई आवाज ही नहीं निकली। बहुत दिनों बाद आज इस अत्यन्त दुखित दम्पति के बीच सन्धि का सूत्रपात होते ही वह फिर छिन्न-भिन्न हो गया।

दोपहर को कहीं किसी को न देखकर छोटी बहू रोती हुई आई और विराज के पैरों पर गिर पड़ी। पति ने जो गलती की थी, उसके डर से व्याकुल होकर दो दिनों से यह इसी मौके की ताक में थी। रोकर कहा—"उन्हें शाप मत देना जीजी, मेरी ओर देखकर क्षमा कर दो। उन्हें अगर कुछ हो गया तो मैं जीऊँगी नहीं।"

हाथ पकड़ कर उसे उठाते हुए विराज ने गम्भीर स्वर में कहा—"मैं शाप नहीं दूँगी बहिन ? उनमें इतनी शक्ति भी नहीं है कि मेरा कुछ बिगाड़ सकें। लेकिन तुम जैसी सती लक्ष्मी पर बिना किसी अपराध के हाथ उठाना दुर्गा मइया नहीं सहन करेंगी।"

मोहिनी कांप गई। आँसू पोंछती हुई बोली—"क्या करूँ जीजी, उनकी आदत ही ऐसी है। जिन देवता ने उन्हें इतना क्रोधी बनाया है, वे क्षमा करेंगे। फिर भी कोई ऐसा देवी-देवता नहीं है जिसकी मैंने मनौती न मानी हो। किन्तु मैं पापिन हूँ, किसी ने मेरी पुकार नहीं सुनी। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जीजी...।" कहते-कहते वह सहसा रुक गई।

अभी तक विराज ने नहीं देखा था कि छोटी बहू की दाहिनी कनपटी पर तिरछा-सा एक गहरा काला दाग पड़ा है। सहमते हुए उसने पूछा—"तेरे माथे पर यह क्या मार का निशान है ?"

छोटी बहू ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया और गरदन हिलाई।

विराज ने पूछा—"किस चीज से मारा था ?"

पति के व्यवहार से लज्जित छोटी बहू सिर नहीं उठा॰ वैसे ही उसने धीरे-से-कहा—"गुस्सा होने पर वे पागल जाजी !"

"सो तो मुझे मालूम है। लेकिन, मारा किन चीज से ?"

वैसे ही सिर झुकाए हुए मोहिनी ने कहा—"पांवों में चट्टी थी।"

विराज स्तब्ध रह गई। उसकी आँखें जलने लगीं। कुछ देर वाद दवी हुई भर्राई आवाज में पूछा—"कैसे तुमने वर्दाश्त कर लिया वहू ?"

छोटी वहू ने सिर कुछ ऊपर करके कहा—"मुझे आदत पड़ गई है जीजी !"

विराज ने विकृत कण्ठ से कहा—"और उसी के लिए तू क्षमा करने को कहने आई है ?"

जेठानी के मुँह की ओर देखकर छोटी वहू ने कहा—"हाँ जीजी; अगर, तुम खुश न होगी तो उनका अनिष्ट होगा और सहने की वात जो कहती हो, तो वह तो मैंने तुम्हीं से सीखा है। मेरा सम्वन्ध तुम्हारे ही चरणों की...।"

विराज ने अधीर होकर कहा—"नहीं छोटी वहू, झूठ मत बोलो। यह अपमान मैं वर्दाश्त नहीं कर सकती।"

मोहिनी ने थोड़ा हँसकर कहा—"अपना अपमान वर्दाश्त कर लेना ही क्या वहुत है जीजी ? तुम्हारे जैसा पति सवके भाग्य में नहीं होता तो भी जितना तुम वर्दाश्त करती हो, उतने में हमारा चूरा निकल जाता। उनके मुँह की हँसी गायव हो गई है। मन सुखी नहीं है—यह सव तुम्हें अपनी आँखों से देखना पड़ता है। ऐसे पति का इतना कष्ट संसार में तुम्हारे अलावा और कोई नहीं वर्दाश्त कर सकता जीजी !"

विराज चुप हो रही।

छोटी वहू ने दोनों हाथों से जल्दी से उसने पांव पकड़ लिए और कहा—"वताओ जीजी, उन्हें क्षमा कर दिया ? यह सुने विना मैं तुम्हें किसी तरह नहीं छोड़ सकती। अगर, तुम प्रसन्न न होओगी, तो उन्हें कोई वचा नहीं सकेगा जीजी !"

विराज ने अपना पाँव हटा लिया और हाथ से छोटी बहू की ठुड्डी पकड़ कर कहा—"क्षमा किया।"

विराज की पद-धूलि एक बार फिर माथे से लगाकर छोटी बहू प्रसन्न चित्त घर चली गई।

मगर, विराज उसी जगह बड़ी देर तक स्तब्ध बैठी रही। उसके अन्तर्तम से जैसे कोई पुकार-पुकार कर कहने लगा—"यह सब देखकर सीख विराज!"

तब से छोटी बहू बहुत दिनों तक इस घर में नहीं आई मगर, उसकी एक आँख और एक कान जैसे हमेशा इसी ओर लगा रहता। आज करीब एक बजे बड़ी सतर्कता से इधर-उधर देखकर वह इस घर में आई।

रसोईघर के बरामदे में विराज गाल पर हाथ धरे बैठी थी। उसे देखकर भी वह ज्यों की त्यों बैठी रही।

छोटी बहू विराज के पाँव छू कर नजदीक ही बैठ गई और कहा—"तुम क्या पागल हुई जा रही हो, जीजी।"

विराज ने मुँह घुमाकर तेज आवाज में जवाब दिया—"तू नहीं होती?"

छोटी बहू ने कहा—"अपने साथ मुकाबिला करके मुझे दोषी मत बनाओ जीजी! मैं तो तुम्हारी पद-धूलि के बराबर भी नहीं हूँ। मगर, बतलाओ तो कि तुम क्यों ऐसी हो रही हो? आज जेठजी को तुमने खाना क्यों नहीं दिया?"

विराज ने कहा—"खाने को तो मना नहीं किया?"

छोटी बहू ने कहा—"सो तो ठीक है मगर, एक बार नजदीक गई क्यों नहीं? खाने के लिए बैठकर उन्होंने कितनी बार पुकारा और तुमने एक बार जवाब तक नहीं दिया। तुम्हीं कहो, इससे दुख होता है या नहीं? एक बार तुम नजदीक चली जातीं तो खाना छोड़कर वे उठ नहीं जाते।"

विराज चुप रही।

छोटी बहू कहने लगी—"यह कहकर कि खाली नहीं थी, मुझे भुलावा नहीं दे सकतीं, जीजी ! हमेशा से सब काम छोड़ कर सामने बैठकर तुमने उन्हें खाना खिलाया है...कभी भी इससे बढ़ कर तुम्हारे लिए कोई काम नहीं रहा है। और आज...।"

बात पूरी होने के पहले ही भावावेश में विराज ने उसका एक हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया और कहा—"तो चल कर देख ले।" यह कहकर वह उसे रसोई घर में खींच ले गई और थाली की ओर इशारा करके कहा—"यह देख !"

छोटी बहू ने गौर से देखा। एक काले रङ्ग की पथरी में बिना साफ किए मोटे चावल का भात और उसी के पास बनाई हुई करेमू की थोड़ी-सी भाजी थी। और कोई उपाय न देखकर आज विराज इसे नदी के तीर से तोड़ लाई थी।

छोटी बहू की आंखों से आंसू गिरने लगे मगर, विराज की आँखों में आंसू का आभास तक नहीं था। देवरानी-जेठानी चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखती रह गईं।

विराज ने सहज-स्वर में कहा—"तू भी तो एक स्त्री है। तुझे भी तो रसोई बनाकर पति के सामने परसना पड़ता है। तू ही बता संसार में कोई स्त्री सामने बैठ कर पति का यह भोजन करना देख सकती है ? पहले बता के, इसके बाद मुझे भर पेट गाली दे, मैं कुछ न कहूंगी।"

छोटी बहू कुछ भी नहीं कह सकी। उसकी आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे।

विराज कहने लगी—"तू ही जानती है, छोटी बहू कि दैवात् रसोई खराब हो जाने से अगर, किसी दिन उन्होंने खाना नहीं खाया तो मुझ पर क्या गुजरी है और आज भूख के समय उनके सामने जो यह लाकर रख देने को मिलता है, लगता है अब यह भी नहीं मिलेगा।" इससे आगे विराज कुछ कह न सकी। देवरानी की छाती पर पछाड़

खाकर वह गिर पड़ी और उसके गले से लिपट कर जोर से रो पड़ी। बड़ी देर तक दोनों सगी बहिनों की तरह एक-दूसरे के गले से चिपटी रहीं। बड़ी देर तक दोनों का अभिन्न नारी-हृदय चुपचाप आँसुओं से भीगता रहा। इसके बाद विराज ने सिर उठाया और कहा—"न, मैं तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगी क्योंकि तेरे सिवा मेरा दुख समझने वाला और कोई नहीं है। मैंने बहुत सोच-विचार कर यह देख लिया है कि जब तक मैं यहाँ से हटूँगी नहीं, उनका दुख-कष्ट दूर नहीं होगा। रहने पर तो उनका मुख देखे बगैर मैं एक दिन भी नहीं रह सकती। मैं जाऊँगी। बता, मेरे जाने पर तू उन्हें देखेगी?"

छोटी बहू ने आँख उठाकर पूछा—"कहाँ जाओगी?"

विराज के सूखे होंठों पर बुझी-सी एक उदास हँसी की रेखा खिंच गई। शायद वह कुछ हिचकिचाई। इसके बाद कहा—"यह कैसे जानूँगी बहन कि कहाँ जाया जाता है। सुनती हूँ, इससे बढ़कर पाप और कोई नहीं है। जो भी हो, दिन-रात की यह कुढ़न तो मिट जायगी।"

अबकी बात समझकर मोहिनी काँप गई। घबराकर उसने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा—"छीः छीः, ऐसी बात जुबान पर मत लाना, जीजी! आत्म-हत्या की बात जो कहता है, उसे भी पाप लगता है और जो सुनता है, उसे भी। छीः छीः—तुम्हें यह क्या हो गया है, जीजी!"

विराज ने उसका हाथ हटाते हुए कहा—"यह नहीं जानती। बस, इतना ही जानती हूँ कि अब उन्हें मैं खाना नहीं दे सकती। मुझे स्पर्श करके आज तुम वायदा करो कि जैसे भी होगा, तुम दोनों भाइयों में मेल करा दोगी!"

"वायदा करती हूँ" कहकर मोहिनी बैठ गई और अपनी पूरी शक्ति से उसके दोनों पाँवों को पकड़ कर कहा—"आज मुझे भी एक भीख दोगी, बतलाओ?"

विराज ने पूछा—"क्या?"

छोटी बहू कहने लगी—"यह कहकर कि खाली नहीं थी, मुझे भुलावा नहीं दे सकतीं, जीजी ! हमेशा से सब काम छोड़ कर सामने बैठकर तुमने उन्हें खाना खिलाया है...कभी भी इससे बढ़ कर तुम्हारे लिए कोई काम नहीं रहा है। और आज...।"

बात पूरी होने के पहले ही भावावेश में विराज ने उसका एक हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया और कहा—"तो चल कर देख ले।" यह कहकर वह उसे रसोई घर में खींच ले गई और थाली की ओर इशारा करके कहा—"यह देख !"

छोटी बहू ने गौर से देखा। एक काले रङ्ग की पथरी में बिना साफ किए मोटे चावल का भात और उसी के पास बनाई हुई करेमू की थोड़ी-सी भाजी थी। और कोई उपाय न देखकर आज विराज इसे नदी के तीर से तोड़ लाई थी।

छोटी बहू की आंखों से आंसू गिरने लगे मगर, विराज की आँखों में आंसू का आभास तक नहीं था। देवरानी-जेठानी चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखती रह गईं।

विराज ने सहज-स्वर में कहा—"तू भी तो एक स्त्री है। तुझे भी तो रसोई बनाकर पति के सामने परसना पड़ता है। तू ही बता संसार में कोई स्त्री सामने बैठ कर पति का यह भोजन करना देख सकती है ? पहले बता के, इसके बाद मुझे भर पेट गाली दे, मैं कुछ न कहूँगी।"

छोटी बहू कुछ भी नहीं कह सकी। उसकी आँखों से झर-झर आंसू गिरने लगे।

विराज कहने लगी—"तू ही जानती है, छोटी बहू कि दैवात् रसोई खराब हो जाने से अगर, किसी दिन उन्होंने खाना नहीं खाया तो मुझ पर क्या गुजरी है और आज भूख के समय उनके सामने जो यह लाकर रख देने को मिलता है, लगता है अब यह भी नहीं मिलेगा।" इससे आगे विराज कुछ कह न सकी। देवरानी की छाती पर पछाड़

मगरा का पीतल के कब्जों का इतने दिनों का कारखाना एका-एक बन्द हो गया। चांडाल जाति की वही लड़की यह खबर विराज को देने आई। साँचों की बिक्री बन्द हो जाने से वह अपने तरह-तरह के नुकसानों और तरकीबों को सुनाने लगी। विराज ने चुपचाप सब सुन लिया। एक साँस छोड़कर वह रह गई। लड़की ने समझा कि उसके दुःख में हिस्सा बटाने वाला कोई नहीं मिला, इससे कुण्ठित होकर वह लौट गई। हाय रे, अबोध दुखिया की लड़की ! तुझे क्या पता कि छोटी-सी साँस में कैसा तूफान उठने लगा था ! तू कैसे समझ पाएगी कि शांत, मौन पृथ्वी के अन्तस्तल में कैसी आग धधकती है !

नीलांबर ने आकर कहा—"उसे काम मिल गया। अब की दुर्गा-पूजा से ही कलकत्ते की एक प्रसिद्ध-कीर्तन-मंडली में वह तबला बजाएगा।"

खबर पाकर विराज का चेहरा मुर्दा-सा हो गया। उसका पति वेश्या के अधीन होकर, वेश्या के साथ भले आदमियों के पास गाता-बजाता फिरेगा, तब कहीं भोजन मिलेगा। लज्जा के कारण जैसे वह धरती में समा जाने लगी मगर जुबान से वह मना भी नहीं कर सकी। दूसरा कोई उपाय जो नहीं था ! सन्ध्या के अन्धकार में नीलांबर उसका चेहरा नहीं देख पाया—अच्छा ही हुआ।

भाटे के खिचाव में पानी जैसे घड़ी-घड़ी अपने क्षय के चिह्न को तट-प्रान्त में अंकित करके क्रमशः दूर होता चला जाता है, ठीक वैसे ही विराज का शरीर सूखने लगा। उसके शरीर-तट की सारी मलिनता को निरन्तर अनावृत कर तीव्र गति से उसका देव-वांछित अनुपम यौवन न जाने कहाँ विलीन होने लगा। चेहरा मुरझा गया

छोटी बहू ने कहा—"जरा रुको, मैं अभी आती हूँ।"

जाने के लिए उसने पैर बढ़ाया ही था कि विराज ने उसका आँचल पकड़ लिया। कहा—"नहीं, जाओ मत, एक तिल भी मैं किसी से नहीं लूँगी।

छोटी बहू ने कहा—"क्यों नहीं लोगी ?"

विराज ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"यह नहीं हो सकता। मैं किसी का कुछ भी नहीं ले सकती।"

जिठानी की इस आकस्मिक उत्तेजना को बहू ने क्षणभर गौर से देखा। इसके बाद वह वहीं बैठ गई और जोर से उसे खींच कर पास बिठाकर कहा—"तो सुनो जीजी ! पता नहीं, क्यों पहले तुम मुझे प्यार नहीं करती थीं और ठीक से बात भी नहीं करती थीं। कितनी बार इसके लिए मैं छिप कर रोई हूँ—और कितने देवी-देवताओं को मनाया है। उन्होंने भी आज सिर उठाकर देखा और तुमने भी छोटी बहिन की तरह मुझे पुकारा है। अब जरा सोच कर देखो कि इस हालत में मुझे देखकर अगर, कुछ न कर पातीं तो तुम कितनी व्याकुल हुई होतीं।"

विराज ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर झुकाए रही।

छोटी बहू उठकर गई और जल्दी ही एक बड़ी-सी टोकरी में खाने की चीज भर कर ले आई।

विराज स्थिर होकर देख रही थी। छोटी बहू जब नजदीक आकर उसके आँचल में सोने की एक मुहर बाँधने लगी तो उससे रहा नहीं गया। जोर से उसे पीछे धकेल कर चिल्ला पड़ी—"न, यह नहीं हो सकता, मर जाने पर भी नहीं।"

मोहिनी सँभल गई। सिर उठाकर कहा—"होगा क्यों नहीं ? जरूर होगा। मेरे जेठजी ने मेरी शादी के समय यह मुझे दिया था।"

मुहर उसने आंचल में बाँध दी और झुककर एक बार फिर जेठानी की पद-धूलि माथे से लगाकर वह चली गई।

मगरा का पीतल के कब्जों का इतने दिनों का कारखाना एका-एक बन्द हो गया। चांडाल जाति की वही लड़की यह खबर विराज को देने आई। सांचों की बिक्री बन्द हो जाने से वह अपने तरह-तरह के नुकसानों और तरकीबों को सुनाने लगी। विराज ने चुपचाप सब सुन लिया। एक साँस छोड़कर वह रह गई। लड़की ने समझा कि उसके दुःख में हिस्सा बटाने वाला कोई नहीं मिला, इससे कुण्ठित होकर वह लौट गई। हाय रे, अबोध दुखिया की लड़की! तुझे क्या पता कि छोटी-सी साँस में कैसा तूफान उठने लगा था! तू कैसे समझ पाएगी कि शांत, मौन पृथ्वी के अन्तस्तल में कैसी आग धधकती है!

नीलांबर ने आकर कहा—"उसे काम मिल गया। अब की दुर्गा-पूजा से ही कलकत्ते की एक प्रसिद्ध-कीर्तन-मंडली में वह तबला बजाएगा।"

खबर पाकर विराज का चेहरा मुर्दा-सा हो गया। उसका पति वेश्या के आधीन होकर, वेश्या के साथ भले आदमियों के पास गाता-बजाता फिरेगा, तब कहीं भोजन मिलेगा। लज्जा के कारण जैसे वह धरती में समा जाने लगी मगर ज़ुबान से वह मना भी नहीं कर सकी। दूसरा कोई उपाय जो नहीं था! सन्ध्या के अन्धकार में नीलांबर उसका चेहरा नहीं देख पाया—अच्छा ही हुआ।

भाटे के खिचाव में पानी जैसे घड़ी-घड़ी अपने क्षय के चिह्न को तट-प्रान्त में अंकित करके क्रमशः दूर होता चला जाता है, ठीक वैसे ही विराज का शरीर सूखने लगा। उसके शरीर-तट की सारी मलिनता को निरन्तर अनावृत कर तीव्र गति से उसका देव-वांछित अनुपम यौवन न जाने कहाँ विलीन होने लगा। चेहरा मुरझा गया

और आँखें अस्वाभाविक हो गईं, मानो हर घड़ी वे कोई भयानक चीज देख रही हों। मगर, उसे देखने वाला अगर, कोई था तो वह थी—छोटी बहू। एक महीने से अधिक हुए भाई के बीमार पड़ जाने के कारण वह भी मायके चली गई है। सब कुछ देखकर, समझकर भी विराज कुछ नहीं कहती। कुछ कहना चाहती भी नहीं। मामूली बातचीत करते भी उसे थकावट-सी मालूम होती है।

इधर कई दिनों से तीसरे पहर उसे कुछ जाड़ा मालूम होता है और सिर में दर्द होने लगता है। उसी हालत में टिमटिमाता चिराग लेकर उसे रसोईघर में जाना पड़ता है। पति घरपर नहीं रहते इसलिए प्राय: वह अब दिन में खाना नहीं बनाती। रात को खाना बनाती है, मगर उस वक्त उसे बुखार रहता है। पति का खाना-पीना हो जाने पर हाथ-पैर धोकर वह पड़ी रहती है। ऐसे ही उसके दिन बीत रहे हैं। विराज अपने ठाकुर देवता से मुँह उठाकर देखने के लिए आजकल नहीं [illegible]ती है—पहले की तरह प्रार्थना नहीं करती। दैनिक-पूजा के बाद [illegible] में आँचल डालकर जब वह प्रणाम करती है, तब मन-ही-मन केवल यही कहती है कि भगवान्, जिस रास्ते जा रही हूँ, उसी रास्ते जरा जल्दी जा सकूँ।

उस दिन सावन की संक्रान्ति थी। सवेरे से ही जोर की बारिश हो रही थी। तीन दिनों से बुखार से पीड़ित रहकर, विराज भूख-प्यास से बेचैन होकर शाम को बिस्तर से उठ बैठी। नीलांबर घर में नहीं था। पत्नी को बुखार रहने पर भी, कुछ मिलने की उम्मीद में परसों उसे श्रीरामपुर के एक धनी चेले के यहाँ जाना पड़ा था। परन्तु, कह गया था कि जैसे भी होगा, शाम को लौट आऊँगा। आज तीन दिन हो गए, उसके दर्शन नहीं हुए। कई दिनों बाद विराज आज दिन में कई बार रोई है। किसी तरह जब नहीं रहा गया तो शाम का चिराग जलाकर, एक तौलिया सिर पर डालकर काँपते-काँपते बाहर आकर रास्ते के किनारे खड़ी हो गई। वर्षा के अन्धकार में जहाँ तक उसकी

नजर गई, उसने देखा, मगर कोई नहीं दिखलाई पड़ा। उसके कपड़े और बाल भीग गए। चण्डीमण्डप की सीढ़ियों का सहारा लेकर वहीं बैठ गई और फिर रोने लगी। पता नहीं, उनका क्या हुआ। एक तो कष्ट और उपवास से उनका शरीर दुर्बल हो रहा है और उस पर यह कड़ी मेहनत। कहीं बीमार तो नहीं पड़ गए। कहीं किसी घोड़ा-गाड़ी के नीचे तो नहीं आ गए! घर बैठे वह कैसे कहे कि क्या हो गया! क्या करे! और एक आफत यह है पीतांबर घर में नहीं है। कल तीसरे पहर छोटी बहू को लेने वह गया है। सारे घर में विराज एकदम अकेली है और वह भी अस्वस्थ। आज दोपहर से बुखार जरूर नहीं है, मगर, घर में खाने लायक कोई चीज नहीं है। दो दिनों से केवल पानी पीकर ही वह रह रही है। भीग जाने के कारण उसे जाड़ा मालूम हुआ और सिर चकराने लगा। हाथ पैर पर जोर देकर किसी तरह वह उठ खड़ी हुई और चण्डीमण्डप में आकर जमीन पर औंधी पड़ कर सिर पटकने लगी।

सदर दरवाजे पर किसी ने धक्का दिया। विराज ने गौर से सुना। दूसरा धक्का लगते ही, 'आती हूँ' कहकर विराज दौड़ पड़ी और दरवाजा खोल दिया। घड़ीभर बैठने की भी शक्ति नहीं थी।

उस मुहल्ले के किसान का लड़का ही किवाड़ों पर धक्का दे रहा था। उसने कहा—"माँजी, दादा ठाकुर ने एक सूखी धोती माँगी है।"

विराज ठीक-ठीक कुछ समझ नहीं पाई। चौखट का सहारा लेकर क्षणभर देखती रहने के बाद कहा—"धोती माँगते हैं?"

लड़के ने जवाब दिया—"गोपाल महाराज की गति करके अभी अभी सब लौटे हैं।"

गति करके? विराज स्तम्भित हो गई। गोपाल चक्रवर्ती इनके दूर के सम्बन्धी थे। उसका बुड्ढा बापू बहुत दिनों से बीमार था। दो दिन पहले त्रिवेणी में गंगा-यात्रा (रोगी के बचने की जब कोई आशा नहीं रहती तो चारपाई के साथ उसे गंगा-किनारे ले जाकर कुछ पूजा-

प्रार्थना की जाती है) कराई गई थी । आज दोपहर को वे मर गए । सब कुछ बतलाकर लड़के ने यह भी बतलाया कि पास-पड़ौस के दादा ठाकुर से बढ़कर नाड़ी देखने वाला और कोई नहीं है । वे भी उसी दिन से साथ ही थे ।

गिरते-लड़खड़ाते विराज उठकर आई, एक धोती उठा बिस्तर पर पड़ रही ।

अन्धेरे घर में जिसकी स्त्री बुखार और दुश्चिन्ता और अनाहार से मुर्दा-सी पड़ी है—यह जानते हुए भी उसका पति अगर, बाहर परोपकारमें लगा हो तो उस अभागिन को कहने-सुनने के लिए और कोई नहीं रह जाता । आज उसके थके दिमाग में यह बात बार-बार आने लगी कि संसार में विराज तुम्हारा कोई नहीं है । तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बहिन नहीं हैं—पति भी नहीं हैं । हैं बस यमराज । उनके यहाँ जाने के अलावा तेरी ज्वाला और कहीं पर शान्त नहीं होने की । बारिश की आवाज में, झींगुरों की झंकार में और हवा की सनसनाहट में जैसे यही 'नहीं है, नहीं' हैं की आवाज उसके कानों में गूँजने लगी । भण्डारे में चावल नहीं है, कोठिला में धान नहीं हैं, बाग में फल नहीं हैं, तालाब में मछली नहीं हैं—सुख नहीं है, शान्ति नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है और घर में छोटी बहू नहीं है । और आश्चर्य यह है कि किसी के विरुद्ध उसके मन में आज कोई खास क्षोभ भी नहीं है । साल भर पहले पति की इस हृदय-हीनता के सौवें हिस्से से भी शायद वह पागल हो उठती, मगर आज एक स्तब्ध अवसाद से जैसे वह अनुभूति शून्य होने लगी ।

वैसे ही निर्जीव-सी पड़ी-पड़ी वह न जाने क्या-क्या सोचती रही । आदत के कारण उसे बीच में सहसा याद आ गया कि दिन भर उन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं ।

अब उससे नहीं रहा गया । जल्दी से बिस्तरा छोड़ कर चिराग हाथ में लेकर वह भंडार घर में गई और देखने लगी कि ...

के लिए कुछ है या नहीं। मगर, कुछ भी नही मिला। अनाज का एक दाना भी वह नही देख पाई। बाहर आकर दीवाल के सहारे खड़ी होकर वह कुछ देर तक सोचती रही। इसके बाद मुँह से हवा देकर हाथ का चिराग बुझा दिया और खिड़की खोलकर बाहर निकल आई। घोर अन्धकार था। मगर, वह भयानक सन्नाटा और घनी कँटीली झाड़ियों से भरा फिसलन वाला तङ्ग रास्ता उसकी गति को रोक नही सका। बाग का दूसरा छोर जंगल-का-सा था। वहाँ चांडाल जाति की छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ थीं। विराज उधर ही गई। बाहर कोई दीवाल नही थी। विराज ने एकदम आँगन में पहुँच कर पुकारा—"तुलसी !"

आवाज सुनकर हाथ मे रोशनी लेकर तुलसी बाहर आया और देखकर अवाक् रह गया।

"इस अँधेरे में माँजी, यहाँ !"

विराज ने कहा—' थोड़ा-सा चावल दे।"

"चावल दूँ ?" तुलसी हतबुद्धि हो गया। वह इस अद्भुत प्रार्थना का कोई मतलब ही नही समझ पाया।

विराज ने उसकी ओर देखकर कहा—"जरा जल्दी कर तुलसी, खड़ा मत रह।"

दो-एक और बात पूछकर तुलसी अन्दर गया और चावल लाकर विराज के आँचल में बाँधकर बोला—"इन मोटे चावलों से तो काम चलेगा नही माँजी ! यह तुम लोग खा नहीं सकोगे !"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"खा सकेंगे।"

इसके बाद चिराग लेकर तुलसी ने रास्ता दिखलाना चाहा मगर, विराज ने मना कर दिया—"कोई जरूरत नही, अकेले तू लौट नहीं सकेगा।" और पलक झँपते वह अन्धकार मे आँखों से ओझल हो गयी।

चांडाल के घर वह आज भीख मांगने आई, भीख माग कर ले

प्रार्थना की जाती है) कराई गई थी। आज दोपहर को वे मर गए सब कुछ बतलाकर लड़के ने यह भी बतलाया कि पास-पड़ोस के दा ठाकुर से बढ़कर नाड़ी देखने वाला और कोई नहीं है। वे भी उसी दि से साथ ही थे।

गिरते-लड़खड़ाते विराज उठकर आई, एक धोती उठा बिस्त पर पड़ रही।

अन्धेरे घर में जिसकी स्त्री बुखार और दुश्चिन्ता और अनाहा से मुर्दा-सी पड़ी है—यह जानते हुए भी उसका पति अगर, बाहर परो पकारमें लगा हो तो उस अभागिन को कहने-सुनने के लिए और कोई नही रह जाता। आज उसके थके दिमाग में यह बात बार-बार आने लगी कि संसार में विराज तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बहिन नहीं हैं—पति भी नहीं हैं। हैं बस यमराज। उनके यहाँ जाने के अलावा तेरी ज्वाला और कहीं पर शान्त नहीं होने की। बारिश की आवाज में, झींगुरों की झंकार में और हवा की सनसनाहट में जैसे यही है, नहीं' हैं की आवाज उसके कानों में गूँजने लगी। भण्डारे में वल नहीं है, कोडिला में धान नहीं हैं, बाग में फल नहीं हैं, तालाब में मछली नहीं हैं—सुख नहीं है, शान्ति नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है और घर में छोटी बहू नहीं है। और आश्चर्य यह है कि किसी के विरुद्ध उसके मन में आज कोई खास क्षोभ भी नहीं है। साल भर पहले पति की इस हृदय-हीनता के सौवें हिस्से से भी शायद वह पागल हो उठती, मगर आज एक स्तब्ध अवसाद से जैसे वह अनुभूति शून्य होने लगी।

वैसे ही निर्जीव-सी पड़ी-पड़ी वह न जाने क्या-क्या सोचती रही। आदत के कारण उसे बीच में सहसा याद आ गया कि दिन भर उन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं।

अब उससे नहीं रहा गया। जल्दी से बिस्तरा छोड़ कर चिराग हाथ में लेकर वह भंडार घर में गई और देखने लगी कि रसोई बनाने

के लिए कुछ है या नहीं। मगर, कुछ भी नहीं मिला। अनाज का ए
दाना भी वह नहीं देख पाई। बाहर आकर दीवाल के सहारे खड़ी होकर
वह कुछ देर तक सोचती रही। इसके बाद मुँह से हवा देकर हाथ का
चिराग बुझा दिया और खिड़की खोलकर बाहर निकल आई। घोर
अन्धकार था। मगर, वह भयानक सन्नाटा और घनी कँटीली झाड़ियों
से भरा दिखलाई वाला तङ्ग रास्ता उसकी गति को रोक नहीं सका।
बाग का दूसरा छोर जंगल-का-सा था। वहाँ चांडाल जाति की छोटी-
छोटी झोंपड़ियाँ थीं। विराज उधर ही गई। बाहर कोई दीवाल नहीं
थी। विराज ने एकदम आँगन में पहुँच कर पुकारा—"तुलसी!"

आवाज सुनकर हाथ में रोशनी लेकर तुलसी बाहर आया और
देखकर अवाक् रह गया।

"इस अँधेरे में माँजी, यहाँ!"

विराज ने कहा—"थोड़ा-सा चावल दे।"

"चावल दूँ?" तुलसी हतबुद्धि हो गया। वह इस अद्भुत
माँगना का कोई मतलब ही नहीं समझ पाया।

विराज ने उसकी ओर देखकर कहा—"जरा जल्दी कर तुलसी,
मत रह।"

दो-एक और बात पूछकर तुलसी अन्दर गया और चावल लाकर
न के आँचल में बाँधकर बोला—"इन मोटे चावलों से तो काम
नहीं माँजी! यह तुम लोग खा नहीं सकोगे!"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"खा सकेंगे।"

इसके बाद चिराग लेकर तुलसी ने रास्ता दिखलाना चाहा
विराज ने मना कर दिया—"कोई जरूरत नहीं, अकेले ही लौट
गा।" और पलक झँपते वह अन्धकार में आँखों से ओझल

चांडाल के घर वह आज भीख मांगने आई, भीख मांग कर ले

प्रार्थना की जाती है) कराई गई थी। आज दोपहर को वे मर गए। सब कुछ बतलाकर लड़के ने यह भी बतलाया कि पास-पड़ोस के दादा ठाकुर से बढ़कर नाड़ी देखने वाला और कोई नहीं है। वे भी उसी दिन से साथ ही थे।

गिरते-लड़खड़ाते विराज उठकर आई, एक धोती उठा बिस्तर पर पड़ रही।

अन्धेरे घर में जिसकी स्त्री बुखार और दुश्चिन्ता और अनाहार से मुर्दा-सी पड़ी है—यह जानते हुए भी उसका पति अगर, बाहर परोपकारमें लगा हो तो उस अभागिन को कहने-सुनने के लिए और कोई नहीं रह जाता। आज उसके थके दिमाग में यह बात बार-बार आने लगी कि संसार में विराज तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, भाई-बहिन नहीं हैं—पति भी नहीं हैं। हैं बस यमराज। उनके यहाँ जाने के अलावा तेरी ज्वाला और कहीं पर शान्त नहीं होने की। बारिश की आवाज में, झींगुरों की झंकार में और हवा की सनसनाहट में जैसे यही ों है, नहीं' हैं की आवाज उसके कानों में गूँजने लगी। भण्डारे में वल नहीं है, कोडिला में धान नहीं हैं, बाग में फल नहीं हैं, तालाब में मछली नहीं हैं—सुख नहीं है, शान्ति नहीं है, स्वास्थ्य नहीं है और घर में छोटी बहू नहीं है। और आश्चर्य यह है कि किसी के विरुद्ध उसके मन में आज कोई खास क्षोभ भी नहीं है। साल भर पहले पति की इस हृदय-हीनता के सौवें हिस्से से भी शायद वह पागल हो उठती, मगर आज एक स्तब्ध अवसाद से जैसे वह अनुभूति शून्य होने लगी।

वैसे ही निर्जीव-सी पड़ी-पड़ी वह न जाने क्या-क्या सोचती रही। आदत के कारण उसे बीच में सहसा याद आ गया कि दिन भर उन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं।

अब उससे नहीं रहा गया। जल्दी से बिस्तरा छोड़ कर चिराग हाथ में लेकर वह भंडार घर में गई और देखने लगी कि रसोई बनाने

के लिए कुछ है या नहीं। मगर, कुछ भी नहीं मिला। अनाज का एक दाना भी वह नहीं देख पाई। बाहर आकर दीवाल के सहारे खड़ी होकर वह कुछ देर तक सोचती रही। इसके बाद मुँह से हवा देकर हाथ का चिराग बुझा दिया और खिड़की खोलकर बाहर निकल आई। घोर अन्धकार था। मगर, वह भयानक सन्नाटा और घनी कँटीली झाड़ियों से भरा फिसलन वाला तङ्ग रास्ता उसकी गति को रोक नहीं सका। बाग का दूसरा छोर जंगल-का-सा था। वहाँ चांडाल जाति की छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ थीं। विराज उधर ही गई। बाहर कोई दीवाल नहीं थी। विराज ने एकदम आँगन मे पहुँच कर पुकारा—"तुलसी !"

आवाज सुनकर हाथ में रोशनी लेकर तुलसी बाहर आया और देखकर अवाक् रह गया।

"इस अँधेरे में माँजी, यहाँ !"

विराज ने कहा—"थोड़ा-सा चावल दे।"

"चावल दूँ ?" तुलसी हतबुद्धि हो गया। वह इस अद्भुत प्रार्थना का कोई मतलब ही नहीं समझ पाया।

विराज ने उसकी ओर देखकर कहा—"जरा जल्दी कर तुलसी, खड़ा मत रह।"

दो-एक और बात पूछकर तुलसी अन्दर गया और चावल लाकर विराज के आँचल में बाँधकर बोला—"इन मोटे चावलों से तो काम चलेगा नहीं माँजी ! यह तुम लोग खा नहीं सकोगे !"

विराज ने सिर हिलाकर कहा—"खा सकेंगे।"

इसके बाद चिराग लेकर तुलसी ने रास्ता दिखलाना चाहा मगर, विराज ने मना कर दिया—"कोई जरूरत नहीं, अकेले तू लौट नहीं सकेगा।" और पलक झँपते वह अन्धकार में आँखों से ओझल हो गयी।

चांडाल के घर वह आज भीख मांगने आई, भीख

भी गई तो भी यह अपमान इसे उतना नहीं खटका । शोक, दुःख, अभिमान—कुछ भी अनुभव करने की शक्ति उसमें नहीं थी ।

घर आकर उसने देखा, नीलांबर आ गया है । तीन दिन से उसने पति को नहीं देखा था । नजर पड़ते ही एक प्रचण्ड आकर्षण उसे उस ओर खींचने लगा, मगर, इस समय वह एक डग भी उसे नहीं हिला सका ।

धातु जैसे तेज बिजली से शक्तिमय हो जाती है, उसी तरह वह पति को नजदीक पाकर शक्तिमय हो उठी थी । फिर भी सम्पूर्ण आकर्षण के खिलाफ वह सुन्न-सी देखती रह गई ।

केवल एक बार ही सिर उठाकर नीलांबर ने गर्दन झुका ली थी । इतने में ही विराज ने देख लिया कि उसकी दोनों आँखें गुड़हल के फूल की तरह लाल हो गई हैं । वह समझ गई कि मुर्दा फूँकने जाकर इन कई दिनों तक लोगों ने लगातार गाँजा पीया है । कुछ मिनट तक ऐसे ही रहने के बाद उसने नजदीक आकर कहा—"खाना नहीं हुआ ?"

नीलांबर ने कहा—"नहीं ।"

और कोई सवाल न पूछकर विराज चौके में जा रही थी । सहसा नीलांबर ने पुकार कर कहा—"इतनी रात को तुम कहाँ गई थीं ?"

विराज खड़ी होगई । कुछ इधर-उधर करके कहा—"घाट ।"

नीलांबर ने अविश्वास के स्वर में कहा—"न, घाट तो नहीं गई थी ।"

"तो यमराज के घर गई थी !" कहकर विराज रसोईघर में चली गई । घंटेभर बाद भात परसकर वह बुलाने आई । नीलांबर तब ऊँघ रहा था । नशे के जोर के कारण उसका माथा गरम हो रहा था । वह सीधा होकर उठ बैठा और वही पहला सवाल फिर दुहराया—"कहाँ गई थी ?"

विराज को गुस्सा हो आया । मगर, उसने अपने आप को सम्भाल कर सहज स्वर मे कहा—"खा-पीकर इस वक्त सो रहो । सवेरे यह बात पूछ लेना ।"

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—"नही, अभी सुनूँगा । बतलाओ कहाँ गई थी ?"

उसकी जिद्द देखकर विराज इस दुख मे भी हँस पड़ी—"अगर न बताऊँ तो ?"

नीलांबर ने कहा—"बतलाना पड़ेगा ।"

विराज ने कहा—"पहले खा-पीलो, तभी सुन सकोगे ।"

नीलांबर ने इस मजाक पर कुछ ध्यान नही दिया । आँखे तरेर कर सिर उठाया । आँखों में नशे की खुमारी नही थी । उनसे हिंसा और घृणा जैसे फूटी पड़ती थी । उसने भयानक आवाज मे कहा—"कभी नहीं । बिना सुने तुम्हारे हाथ का पानी भी नही पीऊँगा ।"

विराज इस तरह चौक पड़ी जितना काले नाग के डस लेने पर भी आदमी नही चौंकता होगा । लड़खड़ाते हुए वह पीछे हटी और दरवाजे के पास बैठ गई । कहा—"क्या कहा ? मेरे हाथ का पानी भी नही पीओगे ?"

"नहीं, किसी तरह भी नहीं ।"

विराज ने पूछा—"क्यों ?"

नीलांबर चिल्ला पड़ा—"पूछ रही हो, क्यो ?"

विराज स्थिर दृष्टि से पति की ओर देखती रह गई । फिर कहा—"अब समझ गई । अब नही पूछूँगी । मगर यह किसी तरह भी नहीं कह सकती । कल जब तुम्हें होश होगा तो सब कुछ अपने आप ही समझ जाओगे । इस समय तुम अपने आपे मे नहीं हो ।

नशाखोर सब कुछ बर्दास्त कर सकता है । मगर अपनी बुद्धि-भ्रष्ट हो जाने की बात नहीं बर्दास्त कर सकता । अत्यन्त गुस्सा

भी गई तो भी यह अपमान इसे उतना नहीं खटका । शोक, दुःख, अभिमान—कुछ भी अनुभव करने की शक्ति उसमें नहीं थी ।

घर आकर उसने देखा, नीलांबर आ गया है । तीन दिन से उसने पति को नहीं देखा था । नजर पड़ते ही एक प्रचण्ड आकर्षण उसे उस ओर खींचने लगा, मगर, इस समय वह एक डग भी उसे नहीं हिला सका ।

धातु जैसे तेज बिजली से शक्तिमय हो जाती है, उसी तरह वह पति को नजदीक पाकर शक्तिमय हो उठी थी । फिर भी सम्पूर्ण आकर्षण के खिलाफ वह सुन्न-सी देखती रह गई ।

केवल एक बार ही सिर उठाकर नीलांबर ने गर्दन झुका ली थी । इतने में ही विराज ने देख लिया कि उसकी दोनों आँखें गुड़हल के फूल की तरह लाल हो गई हैं । वह समझ गई कि मुर्दा फूँकने जाकर इन कई दिनों तक लोगों ने लगातार गांजा पीया है । कुछ मिनट तक ऐसे ही रहने के बाद उसने नजदीक आकर कहा—"खाना नहीं हुआ ?"

नीलांबर ने कहा—"नहीं ।"

और कोई सवाल न पूछकर विराज चौके में जा रही थी । सहसा नीलांबर ने पुकार कर कहा—"इतनी रात को तुम कहाँ गई थीं ?"

विराज खड़ी होगई । कुछ इधर-उधर करके कहा—"घाट ।"

नीलांबर ने अविश्वास के स्वर में कहा—"न, घाट तो नहीं गई थी ।"

"तो यमराज के घर गई थी !" कहकर विराज रसोईघर में चली गई । घंटेभर बाद भात परसकर वह बुलाने आई । नीलांबर तब ऊँघ रहा था । नशे के जोर के कारण उसका माथा गरम हो रहा था । वह सीधा होकर उठ बैठा और वही पहला सवाल फिर दुहराया—"कहाँ गई थी ?"

विराज को गुस्सा हो आया । मगर, उसने अपने आप को सम्भाल कर सहज स्वर में कहा—"खा-पीकर इस वक्त सो रहो । सवेरे यह बात पूछ लेना ।"

नीलांबर ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, अभी सुनूँगा। बतलाओ कहाँ गई थीं ?"

उसकी जिद् देखकर विराज इस दुख मे भी हँस पड़ी—"अगर न बताऊँ तो ?"

नीलांबर ने कहा—"बतलाना पड़ेगा ।"

विराज ने कहा—"पहले खा-पीलो, तभी सुन सकोगे ।"

नीलांबर ने इस मजाक पर कुछ ध्यान नही दिया । आँखें तरेर कर सिर उठाया । आँखो मे नशे की खुमारी नहीं थी । उनसे हिंसा और घृणा जैसे फूटी पड़ती थी । उसने भयानक आवाज मे कहा—"कभी नहीं । बिना सुने तुम्हारे हाथ का पानी भी नही पीऊँगा ।"

विराज इस तरह चौक पड़ी जितना काले नाग के डस लेने पर भी आदमी नही चौंकता होगा । लड़खड़ाते हुए वह पीछे हटी और दरवाजे के पास बैठ गई । कहा—"क्या कहा ? मेरे हाथ का पानी भी नही पीओगे ?"

"नही, किसी तरह भी नहीं ।"

विराज ने पूछा—"क्यों ?"

नीलांबर चिल्ला पड़ा—"पूछ रही हो, क्यों ?"

विराज स्थिर दृष्टि से पति की ओर देखती रह गई । फिर कहा—"अब समझ गई । अब नहीं पूछूँगी । मगर यह किसी तरह नही कह सकती । कल जब तुम्हें होश होगा तो सब कुछ ही समझ जाओगे । इस समय तुम अपने आपे मे नही हो ।"

नशाखोर सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है । मगर भ्रष्ट हो जाने की बात नहीं बर्दाश्त कर सकता । अत्यन्त

होकर नीलांबर कहने लगा—"यही तो कहना चाहती हो कि मैंने गांजा पिया है। आज पहले पहल मैंने गांजा नहीं पिया है कि होश भी खो दूँगा बल्कि तुम ही होश में नहीं हो—तुमने अपनी बुद्धि गंवा दी है। अपने आपे में नहीं हो।"

विराज उसी तरह उसका मुँह देखती रही।

नीलांबर ने कहा—"मेरी आंखों में धूल झोंकना चाहती हो विराज ? मैं मूर्ख हूं जो मैंने पीतांबर की बात पर उस दिन विश्वास नहीं किया। मगर, उसने छोटे भाई का कर्तव्य-पालन किया है। नहीं तो यह नहीं बतला सकती थी कि तुम कहां थी ? झूठ-मूठ ही कह दिया, घाट गई थी ?"

विराज की आंखें बिल्कुल पागलों की सी जलने लगीं। फिर भी अपने आप को सम्भाल कर कहा—"झूठ इसलिए बोली थी कि सुनकर शायद, तुम लज्जित और दुःखी होओगे—खा न सकोगे। मगर, अब वह डर बेकार है। तुम्हें लज्जा-शरम भी अब नहीं रही, तुम आदमी नहीं रहे। मगर, तुमने झूठ नहीं कहा ? इतना बड़ा छल करते एक पशु को भी लज्जा होती मगर, तुम्हें नहीं हुई। भले आदमी, बीमार औरत को छोड़कर तुम किस चेले के घर तीन दिनों से गांजा पी रहे थे, बतलाओ ?"

"बताता हूँ" कह कर पास ही रक्खा हुआ पनडिब्बा उठा कर नीलांबर ने विराज के माथे पर जोर से दे मारा। सिर में लगकर वह बड़ा-सा डब्बा झन से जमीन पर गिर पड़ा। देखते-देखते खून की धार उसकी आंख के कोने से बहकर होठ तक फैल गई।

हाथ से माथा दबाकर विराज चिल्ला पड़ी—"मुझे मारा ?"

मारे गुस्सा के नीलांबर कांप रहा था। कहा—"नहीं, मारा नहीं। मगर, दूर हो जा सामने से, अब यह मुँह मत दिखा, पतिता।"

विराज उठ खड़ी हुई । कहा—"जाती हूँ।"

एक डग आगे जाकर सहसा वह लौट कर खड़ी हो गई और कहा—"मगर बर्दाश्त तो कर सकोगे ? कल जब याद आऐगा कि बुखार की हालत मे तुमने मुझे मारकर निकाल दिया है तो बर्दाश्त कर सकोगे ? तीन दिनों से मैंने कुछ खाया-पीया नही और इस अन्धेरी रात में तुम्हारे लिए भीख माँग कर लाई हूँ। इस पतिता को छोड़कर रह तो सकोगे न ?

खून देखकर नीलांबर का नशा उतर गया था। हतबुद्धि-सा वह चुप हो रहा।

आँचल से खून पोंछकर विराज ने कहा—"साल भर से मैं जाने की सोच रही थी, तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकी। आँख उठा कर देखो, मेरे शरीर मे कुछ नहीं रह गया है, आँखों से अच्छी तरह सूझता नहीं, एकदम भी चलने की ताकत नहीं। मैं जाती नही, मगर पति होकर तुमने मुझ पर लांछना लगाई है, अब यह मुँह मैं दिखला नहीं सकूँगी। तुम्हारे चरणों तले मरने की ही मुझे बहुत लालसा थी, यही लालसा मैं किसी तरह नही छोड़ पा रही थी, आज यह भी छोड़ती हूँ"—कह कर माथे का खून पोछ कर विराज फिर खिड़की के खुले रास्ते से अन्धेरे बाग में गुम हो गई।

नीलांबर ने कुछ कहना चाहा मगर जुबान नहीं हिली। दौड़ कर उसके पीछे-पीछे जाना चाहा मगर, उठ नहीं सका। लगा जैसे कि मंत्र फूँक कर उसे पत्थर की मूर्ति बना कर आँखों से ओझल हो गई।

आज एक बार आँख उठाकर उस सरस्वती नदी की ओर देखो तो डर मालूम होगा। बैशाख की वह सूखी-सी नदी सावन के आखिरी दिनों में लबालब होकर तीव्र गति से बह रही थी। जिस काले पत्थर के ऊपर एक दिन बसन्त के प्रभात में भाई-बहन को असीम सुख से एक साथ हमने देखा, उसी काले पत्थर के

होकर नीलांबर कहने लगा—"यही तो कहना चाहती हो कि मैंने गांजा पिया है । आज पहले पहल मैंने गाँजा नहीं पिया है कि होश भी खो दूँगा वल्कि तुम ही होश में नहीं हो—तुमने अपनी बुद्धि गँवा दी है। अपने आपे में नहीं हो ।"

विराज उसी तरह उसका मुँह देखती रही ।

नीलांबर ने कहा—"मेरी आंखों में धूल झोंकना चाहती हो विराज ? मैं मूर्ख हूँ जो मैंने पीतांबर की वात पर उस दिन विश्वास नहीं किया । मगर, उसने छोटे भाई का कर्तव्य-पालन किया है । नहीं तो यह नहीं वतला सकती थीं कि तुम कहाँ थीं ? झूठ-मूठ ही कह दिया, घाट गई थी ?"

विराज की आंखें विल्कुल पागलों की सी जलने लगीं । फिर भी अपने आप को सम्भाल कर कहा—"झूठ इसलिए वोली थी कि सुनकर शायद, तुम लज्जित और दुःखी होओगे—खा न सकोगे । मगर, अव वह डर वेकार है । तुम्हें लज्जा-शरम भी अव नहीं रही, तुम आदमी हीं रहे । मगर, तुमने झूँठ नहीं कहा ? इतना वड़ा छल करते एक पशु को भी लज्जा होती मगर, तुम्हें नहीं हुई । भले आदमी, वीमार औरत को छोड़कर तुम किस चेले के घर तीन दिनों से गांजा पी रहे थे, वतलाओ ?"

"वताता हूँ" कह कर पास ही रक्खा हुआ पनडिव्वा उठा कर नीलांबर ने विराज के माथे पर जोर से दे मारा । सिर में लगकर वह वड़ा-सा डव्वा झन से जमीन पर गिर पड़ा । देखते-देखते खून की धार उसकी आंख के कोने से वहकर होठ तक फैल गई ।

हाथ से माथा दवाकर विराज चिल्ला पड़ी—"मुझे मारा ?"

मारे गुस्सा के नीलांबर कांप रहा था । कहा—"नहीं, मारा नहीं । मगर, दूर हो जा सामने से, अव यह मुँह मत दिखा, पतिता ।"

विराज उठ खड़ी हुई । कहा—"जाती हूँ ।"

एक डग आगे जाकर सहसा वह लौट कर खड़ी हो गई और कहा—"मगर बर्दाश्त तो कर सकोगे ? कल जब याद आएगा कि बुखार की हालत में तुमने मुझे मारकर निकाल दिया है तो बर्दाश्त कर सकोगे ? तीन दिनों से मैंने कुछ खाया-पीया नहीं और इस अन्धेरी रात में तुम्हारे लिए भीख माँग कर लाई हूँ । इस पतिता को छोड़कर रह तो सकोगे न ?

खून देखकर नीलांबर का नशा उतर गया था । हतबुद्धि-सा वह चुप हो रहा ।

आँचल से खून पोंछकर विराज ने कहा—"साल भर से मैं जाने की सोच रही थी, तुम्हें छोड़कर नही जा सकी । आँख उठा कर देखो, मेरे शरीर मे कुछ नहीं रह गया है, आँखों से अच्छी तरह सूझता नही, एकदम भी चलने की ताकत नही । मैं जाती नहीं, मगर पति होकर तुमने मुझ पर लाछना लगाई है, अब यह मुँह मैं दिखला नहीं सकूँगी । तुम्हारे चरणों तले मरने की ही मुझे बहुत लालसा थी, यही लालसा मैं किसी तरह नहीं छोड़ पा रही थी, आज यह भी छोड़ती हूँ"—कह कर माथे का खून पोंछ कर विराज फिर खिड़की के खुले रास्ते से अन्धेरे बाग में गुम हो गई ।

नीलांबर ने कुछ कहना चाहा मगर जुबान नहीं हिली । दौड़ कर उसके पीछे-पीछे जाना चाहा मगर, उठ नहीं सका । लगा जैसे कि मंत्र फूँक कर उसे पत्थर की मूर्ति बना कर आँखों से ओझल हो गई ।

आज एक बार आँख उठाकर उस सरस्वती नदी की ओर देखो तो डर मालूम होगा । वैशाख की वह सूखी-सी नदी सावन के आखिरी दिनो में लबालब होकर तीव्र गति से बह रही थी । जिस काले पत्थर के ऊपर एक दिन बसन्त के प्रभात में भाई-बहन को असीम स्नेह-सुख से एक साथ हमने देखा, उसी काले पत्थर के ऊपर

इस अन्धेरी रात में किस हृदय को लेकर कांपते-कांपते आकर खड़ी हो गई।

गहरी जल-राशि सुदृढ़ प्राचीर की दीवार से टकरा कर भंवरें बनाती हुई वह रही थी। उसी ओर एक बार उसने झुककर देखा और फिर सामने की ओर। उसके पैरों तले काला पत्थर, सिर के ऊपर काले बादलों से घिरा हुआ आकाश, सामने काला जल चारों ओर का सघन निस्तब्ध वन—और इन सबसे काली हृदय की आत्म-हत्या की प्रवृत्ति है। वहीं बैठ कर वह अपने आंचल से अपना हाथ पैर मजबूती से लपेट कर बांधने लगी।

१२

सवेरे ही आकाश में घना बादल छा गया था। टिप-टिप पानी बरस रहा था। रात को खुले दरवाजे की चौखट पर सिर रखकर नीलांबर सो गया था। सहसा उसके कानों में आवाज आई—

"बहू जी !"

नीलांबर हड़बड़ाकर उठ बैठा। ऐसे ही वर्षा से भरे बादलों से घिरे प्रभात में कभी श्रीराधाजी, श्याम का तान सुनकर घबराकर उठ बैठी थी। आंखें मलता हुआ वह बाहर आया। आंगन में खड़ा तुलसी पुकार रहा था। जल सारी रात वन-वन ढूंढ़ कर, रोकर, थका हुआ, डरा हुआ नीलांबर घण्टे-डेढ़ घण्टे पहले वापस आ गया था और दरवाजे पर ही बैठा था। इसके बाद न जाने कब उसे नींद आ गई थी।

तुलसी ने कहा—"बाबूजी, मांजी कहाँ हैं ?"

नीलांबर ने हतबुद्धि-सा उसकी ओर देखते रहकर कहा—"तो तू किसे पुकार रहा था ?"

तुलसी ने कहा—"मांजी को ही तो बुला रहा हूं, बाबू ? कल पहर रात बीते घोर अन्धेरी रात में मेरे घर जाकर मोटा चावल मांग

लाई थीं। इससे दरवाजा खुला देखकर पूछने चला आया कि उस चावल से काम चला ?"

मन-ही-मन नीलांबर समझ गया मगर, कुछ कहा नहीं। तुलसी ने कहा—"तो इतनी सुबह खिड़की किसने खोली ? शायद बहू जी घाट पर गई है।" कहकर वह चला गया।

नदी के किनारे के सभी गड्ढे, मोड़ और झाड़ियाँ नीलांबर खोजता फिरा। उसने अभी तक नहाया-खाया भी नहीं था। सहसा वह रुक गया। कहा—"यह कैसी बेवकूफी मेरे सिर पर सवार है। क्या अभी तक इसे इतना भी याद नहीं होगा कि दिनभर मैंने कुछ खाया भी नहीं। यह याद कर एक क्षण भी वह नहीं रह सकती है। तो फिर यह कैसा ऊटपटाँग काम मैं सुबह से करता फिर रहा हूँ ? यह उसकी आँखों के सामने इतना साफ दिखलाई देने लगा कि उसकी दुश्चिन्ता मिट गई। कीचड़ ठेलता, खेतों के ढेले फोड़ता हुआ, और नाले लांघता हुआ उर्ध्व-श्वास से घर की ओर दौड़ा।

दिन ढल गया था। पश्चिम आकाश से क्षणभर के लिए बादलों की झाँक से सूरज की लाल किरणें चमक रही थीं। वह सीधा रसोईघर में जाकर खड़ा हो गया। फर्श पर आसन बिछा हुआ है और रात का परोसा खाना पड़ा हुआ है। चूहे दौड़ रहे हैं। अन्धेरे में उसने ख्याल नहीं किया था परन्तु, इस समय देखकर समझ गया कि तुलसी के दिए हुए मोटे चावल का भात यही है। बुखार से काँपती हुई विराज अपने भूखे पति के लिए यही भीख माँग लाई थी। इसी वजह से उसने मार खाई और अभद्र बातें सुनकर लज्जा और धिक्कार के मारे वर्षा की उस भयानक रात में वह घर छोड़कर चली गई।

नीलांबर वहीं बैठ गया। दोनों हाथों से मुँह छिपाकर औरत की तरह वह चिल्लाकर रो पड़ा। अभी वह लौटकर नहीं आई तो अब उसे लौटने की उम्मीद नहीं रही। अपनी पत्नी को

जानता था। वह विराज के स्वाभिमान से परिचित था कि जान चली जाय तो भी दूसरे के आश्रय में रहकर वह अपना यह कलंक प्रगट नहीं होने देगी। उसका हृदय अन्दर से हाहाकार कर उठा। इसके वाद ओंधा पड़ रहा और दोनों हाथ सामने फैलाकर लगातार कहने लगा—"यह मैं सह न सकूँगा, विराज, तू आ !"

शाम होगई। घर में किसी ने चिराग नहीं जलाया। भोजन बनाने के लिए कोई रसोईघर में नहीं घुसा। रोते-रोते नीलांवर की आँखें सूज गईं मगर, किसी ने कुछ नहीं पूछा दो दिन से भूखे-प्यासे नीलांवर को किसी ने खाने के लिए नहीं बुलाया। वाहर जोर से पानी वरसने लगा। घने अन्धकार को चीर कर विजली कौंध जाती, मानो किसी दुर्योग की खवर दे रही हो। फिर भी नीलांवर जमीन में मुँह गड़ाए उसी तरह रोता रहा।

जव उसकी नींद खुली तो सुबह हो चुकी थी। वाहर कुछ अस्पष्ट शोरगुल सुनकर वह दौड़ आया। देखो, दरवाजे पर एक वैलगाड़ी खड़ी है। उससे सामना होते ही छोटी वहू घवराकर घूंघट निकाल कर उतर गई। वड़े भाई पर एक तिरछी नजर डालकर पीतांवर उस ओर चला गया। छोटी बहू नजदीक आई और जमीन पर सिर टेककर प्रणाम किया। नीलांवर ने अस्पष्ट स्वर में कुछ आशीर्वाद दिया और रो पड़ा। छोटी वहू विस्मित हो गई। मगर, उसके सिर उठाने के पहले नीलांवर जल्दी से कहीं चल पड़ा।

जीवन में पहिली वार छोटी वहू अपने पति के खिलाफ नाराज होकर खड़ी हो गई। आँसुओं के वोझ से भरी अपनी दोनों आँखों को ऊपर उठाकर उसने कहा—"तुम क्या पत्थर हो? दुख के मारे जीजी ने आत्म-हत्या करली फिर भी हम गैर वने रहेंगे? तुम रह सको तो रहो मगर, उस घर का सारा काम आज से मैं ही करूँगी।

पीतांवर चौंक पड़ा—"क्या कह रही हो?"

मोहिनी ने जो कुछ सोचा था और तुलसी के मुँह से जो सुना था, सब सुना दिया।

पीतांबर सहज ही मान लेने वाला आदमी नहीं था। कहा—"उसका शरीर तो पानी में उतरा जाता।"

छोटी बहू ने आँखें पोंछकर कहा—"नहीं भी उतरा सकता, धारा में बह गया होगा—सम्भव है गंगा माता ने सती-लक्ष्मी को अपनी गोद में ले लिया हो।...और खोजा ही किसने ?

पीतांबर को पहले विश्वास नहीं हुआ, फिर कहा—"अच्छा मैं खोज करता हूँ।" कुछ सोचकर कहा—"भाभी माता के घर तो नहीं चली गई ?"

मोहिनी ने सिर हिलाते हुए कहा—"कभी नहीं। बड़ी स्वाभिमानी थीं। वह और कहीं नहीं गईं, नदी में जान दे दी।"

"अच्छा, उसका भी पता लगाता हूँ," कहकर पीतांबर उदास मुँह लिए बाहर चला गया। सहसा भाभी के लिए आज उसका जी खराब हो गया। विराज को ढूँढ़ने के लिए आदमी लगाकर जीवन में उसने आज पहली बार पुण्य-कार्य किया। पत्नी को बुलाकर कहा—"यदु से आँगन का बेड़ा तुड़वा दो और तुमसे जो कुछ हो सके, करो। दादा की ओर देखा नहीं जाता।"

यह कहकर थोड़ा-सा गुड़ खाकर पानी पीकर बगल में बस्ता दबाके वह काम पर चला गया। चार-पाँच दिन नागा हो जाने से उसका बहुत नुकसान हो गया था।

काम करते-करते आँसू पोंछती हुई छोटी बहू यही सोच रही थी कि जिस मुँह की ओर देख नहीं सकते, वह मुँह न जाने कैसा हो गया है !

चण्डीमण्डप में आँखें बन्द किये हुए नीलांबर स्तब्ध बैठा था सामने दीवाल पर राधाकृष्ण की युगल जोड़ी की तस्वीर टँगी थी। यह तस्वीर जाग्रत देवता है। जब रेलगाड़ी नहीं थी, तब पैदल-यात्रा

करके नीलांबर के बाबा इसे वृन्दावन से ले आए थे। वे परम वैष्णव थे। यह तस्वीर उनसे आदमी की तरह बातचीत करती थी। यह कहानी अपनी माँ से नीलांबर ने कई बार सुनी है। ठाकुर देवता की बात उसके लिए अस्पष्ट बात नहीं थी। यह सब उनके लिए प्रत्यक्ष सत्य था कि सच्चे विश्वास के साथ पुकार सकने पर ये सामने आकर बात करते हैं। इसी से छिपकर इस तस्वीर से बात करने की कोशिश वह कितनी ही बार कर चुका है, मगर, सफल नहीं हुआ है। इस असफलता का कारण उसने अपनी अक्षमता को ही माना है। लिखना-पढ़ना वह जानता नहीं, बस, अक्षर पहिचानता था। उसके मन में यह सन्देह कभी नहीं उठा कि तस्वीर सचमुच ही नहीं बोलती है। उसके बाद विराज से उसने रामायण-महाभारत पढ़ना और चिट्ठी लिखना सीखा था। शास्त्र या धर्म ग्रन्थों के पास भी वह नहीं फटका था, इसी से ईश्वर के प्रति उसकी धारणा एकदम स्थूल थी इस मामले में वह कोई तर्क भी बर्दाश्त नहीं कर सकता था। इन्हीं बातों को लेकर बचपन में वह कभी पीतांबर के साथ मार-पीट भी कर बैठता था।

विराज नीलांबर से केवल चार साल छोटी थी इसलिए उसे उतना मानती नहीं थी। एक बार मार खाकर विराज ने नीलांबर के पेट में काटकर खून निकाल दिया था। सास ने दोनों को छुड़ा दिया था और विराज को कहा था—"छिः बेटी, बड़ों को इस तरह नहीं काटना चाहिए।"

विराज ने रोते-रोते कहा था—"पहले उन्हीं ने मुझे मारा।"

तब बेटे को बुलाकर उसने कसम दिला दी कि फिर कभी वह बहू पर हाथ न उठाए। तब वह चौदह साल का था, आज वह तीस के करीब है। लेकिन, तब से उस दिन तक मातृ-भक्त नीलांबर ने मां की आज्ञा का उलंघन नहीं किया था।

स्तब्ध नीलांबर ने आज बीते दिनों की इन बातों को याद कर पहले मां से क्षमा माँगी फिर उन्हीं जाग्रत देवता से बुद-बुदाकर

कहा—"भगवान्, तुम तो सबकुछ देखते हो ! अगर उसने कोई अपराध नहीं किया तो सारा पाप मुझ पर लादकर उसे स्वर्ग जाने दो ! यहाँ उसे बहुत दुःख हुआ है, अब उसे और दुःख मत देना।" उसकी बन्द आँखों के कोरों से आँसू गिर रहे थे। सहसा उसका ध्यान भङ्ग हुआ।

"बापू !"

नीलाम्बर ने विस्मित होकर देखा, थोड़ी दूर पर छोटी बहू बैठी है। उसके चेहरे पर मामूली घूंघट था। उसने सहज स्वर में कहा—"बापू, मैं आपकी बेटी हूँ। अन्दर चलिए। नहा-धोकर आज आपको थोड़ा भोजन करना होगा।"

नीलाम्बर पहले अवाक् होकर देखता रहा—मानो युग-युग से किसी ने उसे खाने के लिए नहीं बुलाया हो। छोटी बहू ने फिर कहा—"बापू खाना तयार है।"

अबकी नीलाम्बर समझ गया। एक बार उसका शरीर काँप गया। फिर औंधा होकर वह रो पड़ा—"खाना तैयार है न बेटी ?"

× × ×

गाँव के सब लोगों ने सुना और सबने विश्वास किया कि विराज बहू नदी में डूबकर मर गई। विश्वास केवल धूर्त पीताम्बर ने नहीं किया। मन-ही-मन वह तर्क करने लगा कि इस नदी में इतने मोड़ हैं, इतनी झाड़ियाँ हैं, कहीं-न-कहीं लाश अवश्य अटक जाती। नदी में नाव से और किनारे-किनारे आदमियों के साथ चारों ओर खोज डालने पर भी जब लाश का पता नहीं चला तो उसे विश्वास हो गया कि भाभी ने और चाहे जो कुछ किया हो मगर, नदी में डूबकर नहीं मरी। कुछ देर पहले उसके मन में एक सन्देह उठा था, वही सन्देह फिर उसके मन में उठने लगा। मगर किसी के सामने वह उसे प्रगट नहीं कर पाता था। एक बार मोहिनी से उसने कहना शुरू किया तो जीभ काटकर, कानों में उङ्गली डालकर, पीछे हटकर उसने कहा—

"तब तो देवी-देवता भी मिथ्या हैं, दिन-रात भी झूठ है।" फिर दीवाल पर टङ्गी भगवती अन्नपूर्णा की तस्वीर की ओर देखकर कहा—"मेरी जीजी इन्हीं भगवती के अंश थीं! और कोई यह बात जाने या न जाने मगर, मैं जानती हूँ!" इतना कहकर वह चली गई।

पीताम्बर ने क्रोध नहीं किया। एकाएक वह इस तरह बदल गया था जैसे कोई दूसरा आदमी हो।

मोहिनी जेठ से बोलने लगी है। खाना परोसकर वह आड़ में बैठ जाती और पूछ-पूछ कर सब कुछ जान चुकी है। संसार में केवल उसी ने जाना कि क्या हुआ था, केवल उसी ने समझा कि कैसी मर्मभेदी व्यथा उसकी छाती में चुभ गई है।

नीलाम्बर ने कहा—"बेटी; चाहे मेरा कितना ही अपराध क्यों न हो, परन्तु जानबूझ कर मैंने कुछ नहीं किया। फिर माया-ममता छोड़कर वह कैसे चली गई? क्या इसी कारण चली गई, बेटी कि अब और नहीं सह सकती थी।"

मोहिनी को बहुत कुछ मालूम था। एक बार उसके जी में आया कि कह दे कि जीजी एक दिन अपने जाने की बात कह रही थीं और अपने पति का सारा भार उस दिन मुझे सौंप गईं। मगर उससे कुछ कहा नहीं गया, वह चुप रही।

पीताम्बर ने एक दिन पत्नी से पूछा—"तुम दादा से बातें करती हो?"

मोहिनी ने कहा—"हाँ। उन्हें बापू कहती हूँ, इसी से बोलती हूँ।"

पीताम्बर ने हँसकर कहा—"लोग हँसी उड़ाते हैं।"

"लोग और कर ही क्या सकते हैं? वे अपना काम करें, मैं अपना काम करूँगी। ऐसी हालत में अगर उन्हें बचा सकी तो लोक-निन्दा सिर-आँखों पर ले लूंगी।" कहकर वह काम से चली गई।

१५

पन्द्रह महीने गुजर गए। आगामी शारदीया पूजा के आनन्द का अभाव जल, थल, पवन और आकाश चारों ओर मिल रहा है। दिन का तीसरा पहर है। नीलांबर एक कम्बल के आसन पर बैठा है। शरीर दुबला हो गया है, चेहरा पीला पड़ गया है, सिर पर छोटी-छोटी जटाएँ हैं तथा आँखों में है विश्वव्यापी करुणा और वैराग्य। महाभारत की पोथी बन्द कर विधवा बहू को सम्बोधन कर बोला—"मालूम होता है बेटी, पूँटी आदि आज नहीं आएँगी।"

बिना किनारी की सफेद धोती पहने हुए निराभरण छोटी बहू थोड़ी दूर बैठी महाभारत सुन रही थी। दिन की ओर देखकर कहा—*"नहीं बापू, अब भी वक्त है, वे आ सकते हैं।"*

ससुर के मर जाने के बाद से पूँटी स्वतन्त्र है। पति और दास-दासियों के साथ आज वह पिता के घर आने वाली है और यह समाचार उसने पहले ही भिजवा दिया है कि पूजा के दिनों में वह यहीं रहेगी। उसे यह सब नहीं मालूम है कि माँ की तरह उसकी भाभी नहीं है—और छोटा भाई साँप के काट देने के कारण छः महीने पहले ही मर गया।

नीलांबर ने विश्वास छोड़कर कहा—"सोचता हूँ कि अगर, वह नहीं आती तो अच्छा होता। एक साथ ही इतना दुःख वह कैसे बर्दाश्त कर सकेगी?"

बहुत दिनों बाद अपनी बहुत ही प्यारी छोटी बहन के लिए आज उसकी शुष्क आँखों में आँसू दिखलाई पड़ा। साँप के काट लेने पर पीताम्बर ने कोई झाड़-फूँक नहीं करने दी। अपने भाई के दोनों पैरों को पकड़कर उसने कहा था, "मुझे कोई दवा नहीं चाहिए। अपनी पदधूलि माथे पर, मुँह में दे दो। इससे अगर मैं नहीं बचा

तो वचना चाहता भी नहीं ।" आखिरी समय तक वह उसके पैरों पर सिर रगड़ता रहा। उसी दिन नीलांवर आखिरी वार रोया था। आज उसकी वही आँखें फिर डवडबा आईं। पतिव्रता साध्वी छोटी बहू अपनी आँखों के आंसू चुपके से पोंछकर चुप रही।

नीलांवर धीरे-धीरे कहने लगा—"उसके लिए भी मुझे उतना दुख नहीं होता वेटी ! पीताम्वर की तरह भगवान् अगर, विराज को भी उठा लिए होते तो आज यह मेरे सुख का दिन होता। मगर, वह सव तो हुआ नहीं। पूँटी अव समझदार होगई है। वताओ वेटी, अपनी भाभी के कलङ्क की वात सुनकर उस पर क्या गुजरेगी ? तव तो सिर उठाकर वह देखेगी भी नहीं ।"

सुन्दरी को इतनी आत्मग्लानि हुई कि वह वर्दाश्त नहीं कर सकी। करीव दो महीने पहिले उसने यह स्वीकार कर लिया था कि विराज मरी नहीं वल्कि जमींदार राजेन्द्र के साथ घर छोड़कर चली गई। नीलाम्वर का मानसिक अवसाद उससे देखा नहीं गया। उसने सोचा था कि यह वात सुनकर शायद वह क्रोधित हो जाए और यह दुःख भूल जाए। घर आकर नीलांवर ने यह वात छोटी वहू से कही थी।

वही वात छोटी वहू को याद आ गई। थोड़ी देर चुप रह कर उसने कोमल स्वर में कहा—"ननदजी से नहीं कहा जाएगा।"

"कैसे छिपाऊँगा वेटी ! जव वह पूछेगी कि भाभी को क्या हुआ था तो क्या कहूँगा !"

छोटी वहू ने कहा—"जो वात सभी जानते हैं, वही कही जायगी कि नदी में डूव गई !"

नीलांवर ने सिर हिलाकर कहा—"यह नहीं हो सकता वेटी ! सुना है, पाप छिपाने से और वढ़ता है। हम उसके अपने हैं, हम उसके पाप का वोझ और नहीं वढ़ाएँगे।" यह कहकर वह कुछ हँसा। छोटी वहू समझ गई कि उस जरा-सी हँसी में कितनी व्यथा, कितनी

लगा है। थोड़ी देर बाद छोटी बहू ने सङ्कोच मधुर स्वर में कहा—"बापू, शायद यह सब सच नहीं है।"

'क्या तुम्हारी जीजी की बातें...।"

छोटी बहू सिर झुकाए रही।

नीलांबर ने कहा—"सो नहीं बेटी, सब सच है। तुम्हें तो मालूम ही है बेटी कि गुस्से में वह पागल हो जाती थी। बचपन में भी वैसी ही थी और बड़ी हुई तब भी वैसी ही रही। उस पर मैंने जो अपमान और अत्याचार किया है उसे आदमी तो क्या ईश्वर भी नहीं बर्दास्त कर सकता।"

नीलांबर ने हाथ से एक बूंद आंसू को पोंछकर कहा—"याद आती है बेटी, तो छाती फटने लगती है अभागिन ने तीन दिनों से कुछ खाया-पीया तक नहीं था। बुखार से कांपते-कांपते बारिश में भीगती हुई चावल की भीख मांगने गई थी और इस अपराध पर मैंने...।" इससे आगे वह कुछ नहीं कह सका। धोती का खूंट मुंह में भर उच्छ्वास रोकने की कोशिश करने लगा।

शायद तुम्हारी ही बात सच हो बेटी, उसके शरीर में प्राण नहीं था। जब उसका ज्ञान और बुद्धि अच्छी थी तभी उसने वह मुझे अर्पण कर दिया था। यह कहकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं मानो अन्तर्तम तक डूब कर देखने लगा हो।

मुग्ध होकर छोटी बहू उस शान्त, पीले और मुंदी आँखों वाले चेहरे की ओर देखने लगी। उस चेहरे में क्रोध, हिंसा और द्वेष की छाया तक नहीं थी। थी केवल असीम व्यथा और अनन्त क्षमा की अनिवर्चनीय महिमा। गले में आँचल डालकर उसने प्रणाम किया और नीलांबर की पद धूलि माथे से लगा कर उठ गई। शाम का चिराग जलाते-जलाते उसने मन-ही-मन सोचा—जीजी ने पहचान लिया था इसी से इन्हें छोड़कर एक-दिन भी रहना नहीं चाहती थीं।

× × ×

चार साल बाद पूंटी मायके आई है। ठीक एक बड़े आदमी की तरह। उसके पति, छः महीने का बेटा, पाँच छः दास-दासी और बहुत से सामान से सारा घर भर गया। स्टेशन पर उतरते ही यदु नौकर से उसने सब कुछ सुन कर वहीं से रोना शुरू कर दिया था। एक पहर रात को जोर-जोर से रोते-रोते सारे मुहल्ले को उसने चौंका दिया। घर प्रवेश करते ही दादा की गोद में सिर रख औंधी होकर पड़ी रही। उस रात को उसने पानी तक नहीं पिया था। दादा को भी नहीं छोड़ा। मुँह ढके रख कर धीरे-धीरे सब कुछ सुना। पहले वह भाभी से सङ्कोच करती थी बल्कि डरती भी थी परन्तु, दादा को वह ठीक पुरुष ही नहीं मानती थी, सङ्कोच भी नहीं करती थी। वह रूठती और उपद्रव मचाती थी अपने इस दादा पर ही। ससुराल जाने के एक दिन पहले तक भाभी की डांट सुनकर दादा के गले से लगकर खूब रोई थी। उसने उसी दादा को इतने दिनों तक जितने दुख दिया और जीर्ण-शीर्ण कर ऐसा पागल-सा बना दिया, उस पर उसके क्रोध

और द्वेष की सीमा नहीं रही। अपने दादा के इतने बड़े दुख के आगे पूँटी ने अपने सारे दुखों को तुच्छ मान लिया। उसे अपनी सुसराल वालों से नफरत हुई। छोटे दादा के सांप काटने से मर जाना उसे खटका नहीं और उसकी दुखिया विधवा की ओर वह एकदम उदासीन हो गई।

दो दिनों के बाद उसने अपने पति को बुलाकर कहा—"यह सब लाव-लश्कर लेकर तुम लौट जाओ, दादा के साथ मैं पश्चिम घूमने जाऊँगी। और अगर, तबियत हो तो तुम भी साथ चलो। बहुत वाद-विवाद करने के बाद यतीन्द्र ने पिछला काम ही आसान समझा और सब माल-असबाब बांधकर ठीक करके चला गया। यात्रा की तैयारी होने लगी। पूँटी ने चुपके से सुन्दरी को बुला भेजा था मगर वह आई नहीं। उसने कहलवा दिया कि जो कुछ मुझे कहना था, वह दिया। अब और अपना मुँह मैं नहीं दिखला सकूँगी।

पूँटी गुस्से में होंठ काटकर रह गई, पूँटी की ओर उपेक्षा और उससे भी अधिक उसके निर्दय व्यवहार से छोटी बहू को कितना सदमा पहुँचा इसे अन्तर्यामी ही जानते हैं। हाथ जोड़कर छोटी बहू ने मन-ही-मन कहा—"जीजी, तुम्हारे सिवा और कौन मुझे समझेगा? जहाँ कहीं भी तुम हो, अगर, तुमने मुझे क्षमा कर दिया है तो वही मेरे लिए सब कुछ है।" छोटी बहू हमेशा से ही शान्त स्वभाव की थी आज भी उसने किसी से कोई शिकायत नहीं की! चुपचाप सबकी सेवा करती रही। जेठ को खिलाने का भार अब पूँटी ने ले लिया था। इसलिए वहाँ भी उसके बैठने की अब कोई जरूरत नहीं रही।

जाने के दिन नीलांबर ने अत्यन्त विषमय होकर कहा—"बहू! तुम नहीं चलोगी?"

छोटी बहू ने चुपचाप गरदन हिलादी।

बेटे को गोद में लिए पूंटी दादा के पास आकर सुनने लगी। नीलांबर ने कहा—"यह नहीं हो सकता बेटी, तुम यहाँ अकेली कैसे रहोगी ? और रहकर ही क्या होगा ? चलो !"

छोटी बहू ने उसी तरह सर झुकाए गरदन हिलाते हुए कहा—"नहीं बापू मैं कहीं नहीं जा सकूंगी।"

छोटी बहू के मायके की आर्थिक-दशा अच्छी थी उन लोगों ने कई बार कोशिश की कि विधवा लड़की को ले जाएँ मगर, किसी तरह भी वह जाने को तैयार नहीं हुई।

तब नीलांबर समझता था कि मेरी ही वजह से वह नहीं जाना चाहती मगर, अब यह बात वह नहीं समझ सका कि सुनसान घर में अकेली क्यों रहना चाहती है। पूछा—"क्यों बेटी, कहीं जा क्यों न सकोगी ?" छोटी बहू चुप रही।

"नहीं बतलाओगी तो मेरा जाना नहीं होगा बेटी !"

छोटी बहू ने मधुर स्वर में कहा—"आप जाइए मैं रहूंगी।"

"मगर, क्यों ?"

छोटी बहू फिर चुप हो रही जैसे मन-ही-मन किसी संकोच को जी-जान से दूर करने की कोशिश कर रही हो। इसके बाद थूक घोंटकर बहुत धीरे-से कहा—"जीजी शायद कभी आ जांय, इसी से मैं नहीं जा सकूंगी बापू !"

नीलांबर चौंक गया। उसकी आँखों के सामने ऐसा अन्धकार छा गया जैसे तेज बिजली के चमक जाने से उसकी आँखें चौंधिया गई हों। मगर, वह सब केवल क्षणभर ही रहा। तुरन्त ही उसने अपने आप को सम्भाल लिया और अत्यन्त ही क्षीण हँसी हँसकर कहा—"छिः बेटी तुम अगर, पागल हो जाओगी तो मेरी क्या हालत होगी !"

छोटी बहू ने आँखें बन्दकर क्षणभर कुछ सोचा। उसके बाद बेधड़क स्थिर और धीमे स्वर में कहा—मैं पागल नहीं हुई हूँ बापू ! आप जो चाहें कहें, मगर जबतक चन्द्र और सूर्य को उदय होते देखूँगी तब तक किसी की बात पर मुझे विश्वास नहीं होगा।"

पास-पास खड़े भाई-बहन अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे। वैसे ही सुदृढ स्वर मे उसने फिर कहा—"आप के चरणों मे सिर रख कर मरने का जो वरदान जीजी ने आप से माँग लिया था, कभी किसी तरह झूठ नहीं हो सकता। सती-लक्ष्मी जीजी अवश्य लौटेंगी। जब तक जीऊँगी इसी आशा से उनकी बाट जोहती रहूँगी। मुझसे कहीं जाने के लिए मत कहिएगा बापू!" यह कह कर एक साँस के कई बातें कहने के कारण सिर झुकाकर वह हाँफने लगी।

नीलाबर से न रहा गया। उसके आँसू उमड़ पड़े। वह जल्दी से एक ओर भाग गया।

पूँटी ने एक बार चारों ओर देखा। फिर नजदीक आई और अपने लड़के को पैरों के पास बिठाकर भाभी के गले से लिपट गई और अस्फुट स्वर में रोते-रोते बोली—"मुझे क्षमा करना भाभी, मैं तुम्हें पहचान नहीं पाई थी।"

छोटी बहू ने झुककर उसके बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया और उसके मुँह से मुँह सटा कर आँसू छिपाती हुई वह रसोई घर मे भाग गई।

१४

विराज का मरना ही उचित था, मगर वह मरी नहीं। बहुत दिनों से वह दुख-दैन्य से पीड़ित थी। अनाहार और अपमान की चोट से उसका दुर्बल मस्तिष्क विकृत हो गया था। उसी रात को मरने से ठीक पहले क्षण मे सम्पूर्ण रूप से उसने दूसरी राह पर पैर बढ़ा दिया। मौत को छाती पर रखकर जब वह अपने हाथ-पैर आँचल से बाँध रही थी कि ठीक उसी समय कहीं बिजली गिरी और उस भयानक शब्द से चौंककर उसने सिर उठाया। बिजली के तेज प्रकाश में उस पार का नहाने का वह घाट और मछली मारने के लिए बना लकड़ी का मचान उसकी नजर मे पड़ गया। लगा जैसे

बेटे को गोद में लिए पूंटी दादा के पास आकर सुनने लगी। नीलांबर ने कहा—"यह नहीं हो सकता बेटी, तुम यहां अकेली कैसे रहोगी ? और रहकर ही क्या होगा ? चलो !"

छोटी बहू ने उसी तरह सर झुकाए गरदन हिलाते हुए कहा—"नहीं बापू मैं कहीं नहीं जा सकूंगी।"

छोटी बहू के मायके की आर्थिक-दशा अच्छी थी उन लोगों ने कई बार कोशिश की कि विधवा लड़की को ले जाएं मगर, किसी तरह भी वह जाने को तैयार नहीं हुई।

तब नीलांबर समझता था कि मेरी ही वजह से वह नहीं जाना चाहती मगर, अब यह बात वह नहीं समझ सका कि सुनसान घर में अकेली क्यों रहना चाहती है। पूछा—"क्यों बेटी, कहीं जा क्यों न सकोगी ?" छोटी बहू चुप रही।

"नहीं बतलाओगी तो मेरा जाना नहीं होगा बेटी !"

छोटी बहू ने मधुर स्वर में कहा—"आप जाइए मैं रहूंगी।"

"मगर, क्यों ?"

छोटी बहू फिर चुप हो रही जैसे मन-ही-मन किसी संकोच को जी-जान से दूर करने की कोशिश कर रही हो। इसके बाद थूक घोंट-कर बहुत धीरे-से कहा—"जीजी शायद कभी आ जांय, इसी से मैं नहीं जा सकूंगी बापू !"

नीलांबर चौंक गया। उसकी आंखों के सामने ऐसा अन्धकार छा गया जैसे तेज बिजली के चमक जाने से उसकी आंखें चौंधिया गई हों। मगर, वह सब केवल क्षणभर ही रहा। तुरन्त ही उसने अपने आप को सम्भाल लिया और अत्यन्त ही क्षीण हंसी हंसकर कहा—"छिः बेटी तुम अगर, पागल हो जाओगी तो मेरी क्या हालत होगी !"

छोटी बहू ने आंखें बन्दकर क्षणभर कुछ सोचा। उसके बाद बेधड़क स्थिर और धीमे स्वर में कहा—मैं पागल नहीं हुई हूं बापू ! आप जो चाहें कहें, मगर जबतक चन्द्र और सूर्य को उदय होते देखूंगी तब तक किसी की बात पर मुझे विश्वास नहीं होगा।"

पास-पास खड़े भाई-बहन अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे। ही सुदृढ़ स्वर में उसने फिर कहा—"आप के चरनों में सिर रख र मरने का जो वरदान जीजी ने आप से माँग लिया था, कभी किसी ह झूठ नहीं हो सकता। सती-लक्ष्मी जीजी अवश्य लौटेंगी। जब तक ऊँगी इसी आशा से उनकी बाट जोहती रहूँगी। मुझसे यहीं जाने के ए मत कहिएगा बापू!" यह कह कर एक साँस के कई बातें कहने क कारण सिर झुकाकर वह हाँफने लगी।

नीलाम्बर से न रहा गया। उसके आँसू उमड़ पड़े। वह जल्दी से एक ओर भाग गया।

पूँटी ने एक बार चारों ओर देखा। फिर नजदीक आई और अपने लड़के को पैरों के पास बिठाकर भाभी के गले से लिपट गई और अस्फुट स्वर में रोते-रोते बोली—"मुझे क्षमा करना भाभी, मैं तुम्हें पहचान नहीं पाई थी।"

छोटी बहू ने झुककर उसके बच्चे को उठाकर छाती से लगा लिया और उसके मुँह से मुँह सटा कर आँसू छिपाती हुई वह रसोई घर में भाग गई।

१४

विराज का मरना ही उचित था, मगर वह मरी नहीं। बहुत दिनों से वह दुख-दैन्य से पीड़ित थी। अनाहार और अपमान की चोट से उसका दुर्बल मस्तिष्क विकृत हो गया था। उसी रात को मरने से ठीक पहले क्षण में सम्पूर्ण रूप से उसने दूसरी राह पर पैर बढ़ा दिया। मौत को छाती पर रखकर जब वह अपने हाथ-पैर आँचल से बाँध रही थी कि ठीक उसी समय कहीं बिजली गिरी और उस भयानक शब्द से चौंककर उसने सिर उठाया। बिजली के तेज प्रकाश में उस पार का नहाने का वह घाट और मछली मारने के लिए बनाया गया लकड़ी का मचान उसकी नजर में पड़ गया। लगा जैसे उसकी

प्रतीक्षा में आँखें खोले चुपचाप वे उसकी ओर देख रहे थे। नजर मिलते ही संकेत से उसे बुला लिया। सहसा भयानक स्वर में विराज कह उठी—"वे साधु पुरुष तो मेरे हाथ का पानी तक न पिएँगे, मगर, यह पापी तो पिएगा! अच्छी बात है।"

लोहार की धौंकनी में जलते हुए कोयले की तरह विराज के प्रज्वलित मस्तिष्क के सामने उसका अतुलनीय-अमूल्य हृदय भी जल-भुन कर राख हो गया, पति, धर्म और मृत्यु को भूलकर प्राणपण से वह उस पार के घाट की ओर देखने लगी। आकाश की छाती को चीरती हुई अन्धकार में एक बार बिजली कड़कड़ाकर कौंध गई। विराज की फैली हुई नजर सिकुड़कर अपनी ओर चली आई। सिर बढ़ा कर एक बार उसने पानी की ओर देखा, गरदन घुमाकर एक बार घर की ओर देखा, इसके बाद बन्धन खोलकर पलक मारते ही वह अन्धेरे जङ्गल में गायब हो गई। उसके कदमों की आवाज से खस-खस, सर-सर करके कितने ही जीव-जन्तु उसका रास्ता छोड़कर हट गए, मगर उसने उधर ध्यान ही नहीं दिया—वह सुन्दरी के पास जा रही थी। पंचानन ठाकुरतल्ले में वह रहती थी। पूजा चढ़ाने जाकर विराज कई बार उसका घर देख आई थी। इस गाँव की बहू होने पर भी बचपन में इस गाँव का करीब-करीब सब रास्ता वह जान गई थी। थोड़ी ही देर में सुन्दरी की बन्द खिड़की के पास वह पहुँच गई।

इसके करीब दो घण्टे बाद ही कङ्गाली मल्लाह ने अपनी नाव उस पार के लिए छोड़ दी। कितनी बार रात को पैसे के लालच में उसने सुन्दरी को उस पार पहुँचाया है, और आज भी ले जा रहा है। मगर, आज एक के बदले दो औरतें चुपचाप बैठी हैं, अन्धेरे में उसने विराज का मुँह नहीं देखा, देखता तो भी पहिचान नहीं पाता। अपने घाट के पास आकर दूर से ही अँधेरे में किनारे पर एक धुँधले दीर्घ शरीर को सीधा खड़ा देखकर विराज ने आँखें बन्द कर लीं।

सुन्दरी ने फिर धीरे से पूछा—"इस तरह किसने मारा ?"

विराज ने अधीर होकर कहा—"उनके अलावा मुझ पर और कौन हाथ उठा सकता है सुन्दरी, जो तू बार-बार पूँछ रही है ?" अप्रतिभ होकर सुन्दरी चुप हो रही।

दो घण्टे बाद सजे-सजाए बजरे का लङ्गर ज्यों ही उठने लगा, विराज ने सुन्दरी की ओर देख कर पूछा—"तू साथ नहीं चलेगी ?"

सुन्दरी ने कहा—"नहीं बहू, मैं यहाँ नहीं रही तो लोग शक करेंगे। डरो मत बहू, जाओ, फिर भेंट होगी।"

विराज ने और कुछ नहीं कहा। उसी डोंगी से सुन्दरी घर वापस आ गई।

विराज को लेकर जमींदार का सुन्दर-सुडौल बजरा किनारा छोड़ गया और त्रिवेणी की ओर चल पड़ा। जोर की हवा मे डाँड़ों की आवाज दब गई। एक ओर राजेन्द्र चुपचाप सिर झुकाए शराब पीने लगा। प्रस्तरमूर्ति की तरह पानी की ओर देखती हुई विराज बैठी रही। राजेन्द्र ने आज बहुत शराब पी थी। नशे से वह उन्मत्त हुआ जा रहा था। बजरा सप्तग्राम की सीमा पार कर गया तब उठ कर वह विराज के पास आ गया। विराज के सूखे बाल बिखर कर इधर-उधर लोट रहे थे। माथे का आँचल खिसक कर कन्धे पर आ गया था—उसे कुछ भी होश नहीं था। उसका ध्यान उधर गया ही नहीं कि कौन आया और कौन पास बैठा।

मगर, राजेन्द्र को यह क्या हो गया ? मन-ही-मन डरने लगा जैसे किसी भयङ्कर स्थान में अकेले पड़ जाने से आदमी को भूत-प्रेत का भय होने लगता है। वह देखता ही रह गया, बुला कर बात-चीत नहीं कर सका।

और इस औरत के लिए उसने क्या नहीं किया ? दो साल तक इसके लिए दीवाना रहा। सोते में जागते में केवल एक झलक

देख लेने की लालसा में वह वन-वन मारा फिरा। जिस बात की उसे स्वप्न में भी आशा न थी, वही समाचार सुन्दरी ने उसे सोते से जगाकर उसके कान में कहा तो अपने सौभाग्य पर पहले उसे विश्वास ही नहीं हुआ।

सामने नदी घूम गई थी। उसके दोनों किनारों पर बहुत से बरगद और पाकड़ के बड़े-बड़े पेड़ और बाँस के झुरमुट थे। जगह-जगह बाँस की लाइनें और पेड़ों की डाल पानी की सतह तक झुक गई थीं जिससे अन्धकार और घना हो गया था। यहाँ पहुँच कर राजेन्द्र ने अपना साहस बटोर कर किसी तरह कह डाला—"तुम...आप...आप जरा अन्दर चलकर बैठें, यहाँ पेड़ों की डालियां वगैरह लगेंगी।"

विराज ने सिर घुमा कर देखा। सामने एक छोटा-सा चिराग जल रहा था। उसी की मद्धिम रोशनी में दोनों की आँखें मिलीं। उस समय वह दुश्चरित्र पराई जमीन पर खड़ा होकर भी उस नजर को बर्दाश्त कर सका था मगर, आज अपने कब्जे में होने और शराब के नशे में चूर रहने पर भी वह उस नजर के सामने सीधे नहीं देख सका। उसकी गरदन झुक गई।

विराज देखती रह गई। पर पुरुष उसके इतने नजदीक बैठा है, फिर भी मुँह पर पर्दा नहीं है, सिर पर आंचल तक नहीं है। इसी समय मल्लाह डांड़ चलाना छोड़कर छोटी-छोटी डालियां हटाने में व्यस्त हो गए। नदी यहां पर कुछ तङ्ग थी इसलिए भाटे का आकर्षण भी तेज था। "अरे, सावधान!" कह कर राजेन्द्र ने डांड़ चलाने वालों को सावधान किया और फिर उसी ओर देखते हुए विराज से कहा—"कहीं चोट लग जायगी, अन्दर आ जाइए।" और खुद कमरे में चला गया।

यन्त्र-चालित-सी विराज उसके पीछे-पीछे चली आई। मगर कमरे में कदम रखते ही सहसा वह चिल्ला पड़ी—"मइया री!"

राजेन्द्र चौंक गया। चिराग की धुँधली रोशनी में विराज

की दोनों आंखें और खून से सना माथे का सिन्दूर चामुण्डा के तीनों नेत्रों की तरह जल रहा था। वह मतवाला शराबी बेंत खाए कुत्ते की तरह एक डरी हुई आवाज करके कांपते-कांपते उस आग के सामने से हट गया। अन्धेरे में पांव तले सांप पड़ जाने से जैसे आदमी चौंक पड़ता है, ठीक उसी तरह बिराज कर बाहर हो गई। एक बार उसने पानी की ओर देखा और 'मइया री, यह मैंने क्या किया', कह कर वह उसी अन्धकारपूर्ण अनन्त जल में उछल पड़ी।

मल्लाह चिल्लाकर इधर-उधर दौड़ पड़े। बजरा उलटते-उलटते बचा। इसके अलावा और कुछ नहीं कर पाए। गौर से पानी की ओर देखने पर भी उन्हें कुछ नजर नहीं आया। राजेन्द्र अपनी जगह से जरा भी नहीं हिला। उसका सारा नशा उतर गया था फिर भी वह खड़ा रहा। तेज धार के कारण कुछ देर मे बजरा अपने आप ही बाहर निकल आया मल्लाह ने नजदीक आकर पूछा—"बाबू साहब, क्या किया जायगा? पुलिस में खबर कर दी जाय।"

विह्वल होकर राजेन्द्र ने उनकी ओर देखते हुए भराई आवाज में कहा—"क्यों, जेल जाने के लिए? अरे गदाई किसी तरह जल्दी भाग चल।"

गदाई पुराना मल्लाह था, बाबू को पहचानता था। सभी जानते थे, इसलिए मामला कुछ-कुछ समझ गए थे। इस इशारे उनकी आंखें खुल गईं। सबको इकट्ठा करके आज्ञा देकर बजरा उड़ता हुआ वहाँ से अदृश्य हो गया।

कलकत्ते के पास पहुंचकर राजेन्द्र ने चैन की सांस ली। पिछली रात को अन्धेरे में आमने-सामने बैठ कर उसने जिन आँखों को देखा था, उसकी याद कर इतनी दूर आकर दिन में भी वह कांप गया। उसने अपना कान पकड़कर मन-ही-मन कहा—"जीवन में फिर ऐसा काम कभी नहीं करूंगा। कोई नहीं जानता कि किसके मन में क्या है। उस पगली ने, अपनी मौत-सी आँखों से

उसके प्राण नहीं ले लिए इसी को उसने अपना बड़ा भाग्य समझा और किसी भी समय किसी भी बजह से उधर मुँह कर सकूंगा, इतना विश्वास उसमें नहीं रहा। अब तक बेबकूफ कुलटाओं से ही उसका पाला पड़ा था। वह नही जानता था कि सती क्या चीज होती है। उस पापी को अपने जीवन में पहले-पहल होश हुआ कि केंचुल से खेला जा सकता है मगर, जमींदार के लड़के के लिए भी जावित विषधर खेलने की चीज नहीं है।

१५

उस दिन सिरहाने बैठी हुई औरत से पूछने पर विराज ने जाना कि वह हुगली के अस्पताल में है। बहुत दिनों बाद जब उसे होश हुआ, तभी से वह अपनी बात याद करने की कोशिश कर रही थी। एक-एक करके बहुत-सी बातें उसे याद भी हो आई हैं।

एक दिन बरसात की एक रात में उसके पति ने उसके सतीत्व पर कटाक्ष किया था। पीड़ा तथा अनाहार से जर्जर और टूटा हुआ उसका शरीर एवं निकल मन उस निराधार आरोप को बर्दाश्त नहीं कर सका। बहुत दिनों से दुख सहते-सहते वह पागल-सी हो रही थी। अभिमान और घृणा से उस दिन वह 'अब उनका मुँह नहीं देखूँगी' कह कर सारा बन्धन तोड़ कर नदी में डूब मरने के लिए गई थी, किन्तु मरी नहीं।

उसके बाद बुखार और मानसिक विकार की झोंक में वह बजरे पर भी चढ़ी थी और बीच में ही नदी में कूद कर—तैर कर किनारे आई थी। भीगे सिर और भीगे कपड़े लिए सारी रात वहीं बैठी-बैठी काँपती रही। फिर न जाने कैसे एक गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर पड़ गई थी। बस, इतना ही याद आता है। यह याद नही है कि कौन यहाँ लाया और कब लाया और कितने दिनों से वह यहाँ पड़ी है। और याद आता है कि घर छोड़कर भागने वाली वह एक कुलटा है, परपुरुष का आश्रय लेकर घर से निकली है।

इसके आगे वह और कुछ नहीं सोच पाती थी—सोचना चाहती भी नहीं थी। धीरे-धीरे वह अच्छी होने लगी,उठकर थोड़ा-थोड़ा टहलने भी लगी। मगर, अपनी चिन्ता को भविष्य की ओर से उसने बिल्कुल अलग रखा था। उसके शरीर का रोम-रोम यह अनुभव करता है कि वह कैसी घटना थी। मगर, जिस पर पर्दा पड़ा है, उसका कोना उठाकर देखने से भी मारे डरके उनका सारा शरीर ठण्डा पड़ने लगता, सिर में चक्कर आने लगता।

अगहन के महीने में एक दिन सबेरे उसी औरत ने आकर कहा—"अब तुम अच्छी हो गई हो, अब तुम्हें जाना होगा।"

'अच्छा' कहकर विराज चुप हो रही। वह औरत उसी अस्पताल की थी। उसने समझा था कि बीमार गरीब का शायद कोई अपना नहीं है। उसने कहा—"बुरा मत मानना बेटी, मैं पूछती हूँ कि जो लोग तुम्हें यहाँ कर गए थे, वे फिर तो यहाँ आए नहीं। वे क्या तुम्हारे अपने नहीं थे ?"

विराज ने कहा, "नहीं उन्हें तो मैंने कभी देखा भी नहीं। बरसात की एक रात में मैं त्रिवेणी के पास एक नदी में डूब गई थी। मालूम होता है, दया करके वे लोग ही मुझे यहाँ कर गये हैं।"

औरत ने कहा—"ओह नदी में डूबी थी ? तुम्हारा घर कहाँ है?"

विराज ने मामा के घर का नाम लेकर कहा—"वहीं जाऊँगी, वहाँ मेरे अपने आदमी हैं।"

वह औरत अधिक उम्र की थी विराज के अच्छे स्वभाव के कारण उसे उस पर कुछ ममता हो गई थी। उसने सहानुभूति दिखलाते हुए दया पूर्वक कहा—"वहीं चली जाओ बच्ची, सावधानी से रहना, कुछ दिनों में अच्छी हो जाओगी।"

विराज ने कुछ हँसकर कहा—"अब क्या अच्छी होऊँगी, माँ यह आँख अच्छी नहीं होगी, यह हाथ ठीक नहीं होगा।"

बीमारी के बाद से उसकी बाँई आँख से सूझता नहीं था और बायाँ हाथ बेकार हो गया था। उस औरत की आँखें डबडबा आईं। कहा—"कुछ कहा नहीं जा सकता बच्ची, अच्छा भी हो सकता है।"

दूसरे दिन वह कुछ राह-खर्च और जाड़े का एक पुराना कपड़ा दे गई। विराज ने उसे ले लिया। प्रणाम करके वह बाहर जा रही थी कि सहसा लौट आई। बोली—"मैं जरा अपना मुँह देखना चाहती हूँ, अगर एक शीशा...।"

"हाँ-हाँ अभी लाती हूँ" कहकर आइना लाने वह गई और विराज के हाथ में देकर कहीं चली गई। विराज शीशा लेकर एक बार फिर अपने लोहे के पलंग पर बैठ गई और देखने लगी। शीशे में अपना मुँह देखते ही उसे अपने आप से नफरत हो गई। शीशा फेंक कर बिस्तरे में मुँह छिपाकर वह कराह उठी। उसका सिर घुटा हुआ है—आकाश में छाए बादलों की तरह उसके बालों का क्या हुआ? उसके सारे मुख को इस तरह क्षत-विक्षत किसने कर दिया? कमल की तरह की उसकी बड़ी-बड़ी आँखें क्या हुईं? अतुलनीय सोने-सा उसका रंग कहाँ गया? भगवान्! यह कितनी बड़ी सजा दी तुमने? अगर, कभी भेंट हो गई तो कैसे यह मुँह दिखलाऊंगी? जब तक शरीर में प्राण रहता है, तक तक कुछ-न-कुछ आशा बनी ही रहती है शायद, इसी से अन्तःसलिला नदी की तरह उसके अन्तस्थल में थोड़ी-सा आशा बनी थी। दयामय! उसे सुखाकर नष्ट करने से तुम्हें क्या मिला? होश आ जाने पर रोग-शय्या पर पड़े-पड़े जब उसे पति का मुँह स्पष्ट दिखलाई देता तो सहसा उसे ख्याल होता था कि मैंने जो कुछ किया है, वह तो बेहोशी की हालत में किया है। तो क्या मेरा अपराध वे क्षमा नहीं करेंगे? सब पापों का प्रायश्चित है, केवल इसी एक का नहीं है? ईश्वर जानते हैं कि सचमुच मैंने कोई पाप नहीं किया है, तो इतने दिनों तक मैंने पति की जो सेवा की है, उससे वह धुलकर साफ नहीं हो जायगा? बीच-बीच में सोचती कि उसके मन में क्रोध नहीं टिकता तो सहसा अगर, मैं उनके पैरों पर

पड़ जाऊँ और सब कुछ साफ-साफ कह दूँ मुँह की ओर देख कर क्या करेंगे ? इस बात को देखकर क्या कहेंगे ? उसने रात-रात भर जाग कर कितनी तरह से बना-सँवारकर कल्पना से देखा है। जब नींद आने लगती तो उठ जाती और आँखें धोकर फिर यही बात वह नए सिरे से सोचने लगती। भगवान, उसके इस विचित्र चित्र को क्यों तुमने पैरों तले कुचल दिया ? अपने पति के चरणों पर औंधी होकर शर्म के मारे वह सिर उठा कर उनकी ओर देख सकेगी ?

उस कमरे में एक और मरीज औरत थी। विराज को इस तरह रोते देख वह विस्मित होकर उसके पास आई और पूछने लगी—"क्या हुआ जी ! इस तरह रो क्यों रही हो ?"

उफ ! एक और आदमी विराज के रोने का कारण जानना चाहता है।

विराज ने तुरन्त अपनी आँखें पोंछ ली और बिना किसी और देखे वह धीरे से बाहर निकल गई।

लोगों की भीड़ और शोरगुल से गूँजती सड़क पर उस दिन एक किनारे से बिना आदत के थकी-सी, एक अनिश्चित यात्रा के लिए जब उसने कदम बढ़ाया तो उसकी छाती को चीर कर एक दीर्घ नि.श्वास बाहर निकल गई। उसने मन-ही-मन कहा—"ईश्वर, शायद तुमने यह अच्छा ही किया। आँख उठाकर अब कोई मेरी ओर नहीं देखेगा—यह चेहरा और ये आँखें शायद इसी यात्रा के लायक हैं। गाँव के लोग जानते हैं कि घर छोड़ कर भागने वाली वह एक कुलटा है। इसी से यह मुख उठाकर अपने गाँव की ओर देखना उसके लिए मना हो गया है। ईश्वर ! इस मुख का ऐसा हो जाना ही शायद, तुम्हारा मंगलमय विधान है।"

विराज रास्ते पर चलने लगी।

१६

कितने ही दिन गुजर गए। विराज। पहले दासी का काम करने गई मगर, उसकी टूटी देह से काम नहीं हो सका, मालिक ने हटा दिया। तव से वह रास्ते-रास्ते भीख माँगती फिरती है, पेड़ के नीचे वना-खा लेती है और वहीं सो रहती है। उसके वर्तमान जीवन में उसके पिछले जीवन का तनिक भी चिह्न नहीं रह गया है। उसके वदन पर तार-तार फटे कपड़े, जटा वनें हुए थोड़े से रूखे वाल और भीख में मिली एक मैली कथरी है। इस समय वैसा ही उसका शरीर है, वैसा ही रंग है और वैसा ही उसका सब कुछ है। और उसकी उम्र महज पच्चीस साल की है। एक दिन इस देह की तुलना स्वर्ग में भी नहीं थी ! अतीत से अलग कर भगवान ने जैसे उसे एक कदम नए सिरे से वना दिया है। खुद भी वह सव कुछ भूल गई है, मगर दो वातें अव भी वह नहीं भूल सकी है। एक तो यह कि 'दो' कहकर कुछ माँगते समय आज भी उसका मुँह लाल हो जाता है और दूसरी वात यह उसे नहीं भूलती कि वहुत दूर जाकर मरना पड़ेगा। वह यह नहीं जानती कि कहाँ मरेगी मगर, इतना जरूर जानती है कि उस दूर जगह में चलने के लिए ही वह लगातार रास्ता तय कर रही है। किसी तरह भी अपनी यह हालत वह पति को नहीं दिखला सकेगी। और उसने चाहे जो भी गलती की हो मगर उसकी यह हालत देखकर पति की छाती फट जायगी। यही वात न भूल सकने के कारण वह निरन्तर दूर हटती जा रही थी।

साल भर से वरावर वह चलती जा रही है मगर, उसकी मंजिल कहाँ है ? कहाँ, किस भूसेज पर इस लज्जाहत तप्त माथे को उठा कर इस लांछित जीवन को वह नष्ट कर सकेगी ? आज दो दिनों से वह एक पेड़ के नीचे पड़ी है—उठ नहीं सकी।

धीरे-धीरे फिर रोग ने घेर लिया—खाँसी, बुखार और छाती में दर्द। कमजोर शरीर लिए, कड़ी बीमारी में फँस कर अस्पताल गई थी। अच्छी होते न होते, खाए बिना खाए रास्ते में चल पड़ी। उसकी देह बहुत सबल थी, इसी से अब तक वह टिकी हुई थी मगर, लगता है कि अब वह नहीं टिकेगी। आज आँखें बन्द किए वह सोच रही थी कि क्या इस पेड़ की छाया ही उसकी आखिरी मंजिल है? क्या इसी के लिए वह अविराम गति से चलती जा रही है? अब क्या वह नहीं चल सकेगी?

दिन बीत गया। पेड़ की सब से ऊँची चोटी पर से सूरज की आखिरी लाल आभा भी मिट गई। गाँव के अन्दर से उड़ती हुई संध्याकालीन शंख ध्वनि उसके कानों में पड़ी। उसी के साथ उसकी मुँदी आँखों के सामने अपरिचित गृहस्थ-वन्धुओं की शान्त-मंगल मूर्तियाँ नाच उठीं। इस समय कौन क्या कर रही है, किस तरह चिराग जला रही है, हाथ में चिराग लिए कहाँ-कहाँ दिखाती फिरती है, गले में आँचल डालकर अब प्रणाम करती है, तुलसी के चबूतरे पर चिराग रखकर कौन भगवान से क्या निवेदन करती है, यह सब कुछ वह आँखो से देखने लगी और कानों से सुनने लगी। बहुत दिनों बाद उसकी आँखों में आंसू आ गए। उसे ऐसा लगा जैसे कितने ही हजार वर्षों से वह किसी घर में सांध्यदीप नहीं जला सकी हो किसी का मुख याद करके भगवान् के चरणों में उनकी आयु और ऐश्वर्य के लिए प्रार्थना नहीं कर सकी हो। इन सब बातों को जी-जान से कोशिश करके वह भूली रहती थी, परन्तु, आज नहीं भूल सकी। शंखध्वनि सुनकर उसका भूखा-प्यासा मन कोई निषेध न मानकर गृहस्थ-वन्धुओं के बीच में जाकर खड़ा हो गया। एक साथ ही उसके मन में घर-द्वार, आँचल, तुलसी का चबूतरा और चिराग उभर आया—जैसे यह सब उसका जाना पहचाना हो। उन सभी के हाथ का चिह्न दिखलाई पड़ रहा है। फिर उसका दुख, भूख-प्यास, पीड़ा की यातना—कुछ भी नहीं रहा। एकाग्रचित्त होकर मन-ही-मन वह उन

वहुओं के पीछे-पीछे घूमने लगी। उनके साथ वह चौके में रसोई बनाने गई। रसोई बना कर उन लोगों ने जब अपने पतियों को भोजन परसा। इसके बाद सारा काम-धन्धा खत्म करके रात को जब वे अपने सोए हुए पतियों की सेज के पास आकर खड़ी हो गईं तो वह भी खड़ी होने के लिए काँप गई। यह तो उसी के पति हैं ! फिर उसकी पलकें नहीं मुँदी, सोए हुए पति की ओर एकटक निहारती हुई उसने अपनी सारी रात आँखों में काट दी। जब से उसने घर छोड़ा, ऐसी एक भी रात उसके पास नहीं आई। उसके भाग्य में आज यह कैसा सुख है ! निद्रा के जागरण में, तन्द्रा के स्वप्न में यह कैसा मधुर निशा-यापन है ! विराज बेचैन होकर उठ बैठी। उस समय भी पूरब का आकाश साफ नहीं हुआ था। चाँदनी उस समय भी शाखाओं और पत्तियों के बीच से होकर पेड़ के नीचे और उसके चारों ओर हार सिंगार के फूलों की तरह झाड़ रही थी। वह सोच रही थी। कि अगर यह असत्य ही है तो इस तरह क्यों वे आज दिखलाई पड़े ? क्या वे यही कह गए हैं कि उसके पाप का प्रायश्चित पूरा हो गया ? तब तो एक घड़ी भी वह देर नहीं कर सकेगी। . होकर वह सुबह का इन्तजार करने लगी। आज रात सहसा उसकी बन्द दृष्टि को कोई जोर से खोलकर सारे हृदय में आनन्द और माधुर्य भर गया। अब पति से भेंट हो या न हो परन्तु एक मिनट के लिए भी अब उसे कोई उनसे अलग न कर सकेगा। इस तरह उन्हें पाने की राह थी, फिर भी बेकार ही उनसे अलग होकर वह इतने दिनों से दुख पाती रही। इस गलती के कारण गहरी वेदना बार-बार काँटे की तरह चुभने लगी। न मालूम कैसे आज उसे विश्वास हो गया कि उसे बुला रहे हैं।

विराज ने दृढ़ स्वर से कहा—"ठीक ही तो है, यह शरीर क्या मेरा अपना है कि उनकी आज्ञा के बिना इस तरह नष्ट कर रही हूँ ? यह विचार करने का अधिकार तो उन्हें है ! जो कुछ करना होगा, वे ही करेंगे। सभी बातें उनके चरणों में निवेदन करके ही मुझे छुट्टी मिलेगी।"

विराज लौट पड़ी।

आज उसका बदन हल्का था, उसके कदम जैसे कड़ी मिट्टी पर नहीं पड़ रहे थे। मन उसका परिपूर्ण था, उसमें जरा-सी भी ग्लानि नहीं थी। चलते-चलते बार-बार यही बात वह सोचने लगी कि उसकी यह कितनी बड़ी भूल थी! उसके सिर पर कैसा अहंकार लद गया था! यह कुरूप और कुत्सित मुख किसी के सामने करने में लज्जा नहीं मालूम हुई और उनसे लज्जा मालूम हुई जिसके सामने इसे करने का अधिकार विधाता ने नौ साल की उम्र मे ही तय कर दिया था।

१७

पूँटी अपने दादा को घड़ी भर भी आराम-विश्राम नहीं लेने देती। पूजा के दिनों से लेकर पूस के आखिर तक एक शहर से दूसरे शहर को और एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को खीचे जा रही है। वह अभी कम उम्र की है, उसका शरीर स्वस्थ और सबल है कौतूहल असीम है। बराबर उसके साथ कदम बढ़ाए जाना नीलांबर के बूते के बाहर है। वह थक गया है, फिर भी वह समझ नही पाता कि क्यों नहीं कहीं रुक कर विश्राम कर लेने को उसका जी चाहता। क्यों उसका मन दिन-रात घर की ओर उन्मुख रहता है? क्यों उसका थका मन अपने देश-अपने गाँव लौट जाने के लिए दिन-रात रोया करता है? देश मे या गाँव में क्या है? ऐसे स्वास्थकर स्थान में मन क्यों नहीं लगता? बीच मे छोटी बहू पूँटी को चिट्‌ठी लिखती है मगर, उसमें भी कोई ऐसी बात नहीं रहती। फिर भी बन-जंगल की लगातार चिन्ता से उसकी जीर्ण देह कङ्कालसार होने लगी। पूँटी चाहती है कि सब कुछ भूलकर दादा फिर पहले जैसे हो जाँय—उसी तरह स्वस्थ और सदा प्रसन्न रहें, उसी तरह हर घड़ी गाते-गुनगुनाते रहें, उसी तरह

कारण-अकारण खुल कर हँसते रहें। मगर उसकी सारी कोशिश दादा बेकार किए जा रहे हैं। पूँटी ने पहले ऐसा नहीं सोचा था। वह हताश नहीं हुई थी। समझती थी कि दो दिन बाद सब ठीक हो जाएगा मगर, दो-दो दिन करते-करते चार-पाँच महीने बीत गए फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ। घर छोड़कर आने के दिन मोहिनी की बातों और व्यवहार से उसके मन में विराज के प्रति करुणा का भाव पैदा हो गया था, उसकी बातों पर उसने विश्वास पैदा किया था। अगर, उसका दादा ठीक हो जाता तो बचपन की बातें याद करके मन-ही-मन सम्पूर्ण रूप से शायद वह विराज को क्षमा भी कर देती क्षमा करने के लिए उसी भाभी की मधुर स्मृति जगाने के लिये एक बार वह व्याकुल भी हो उठी थी मगर, वह सुयोग उसे मिलता कहाँ है ? दादा ठीक ही नहीं होते ! संसार में ऐसे किसी दुख या कारण की वह कल्पना ही नहीं कर सकती थी जिससे कोई इस आदमी को इतने दुख में डालकर हट कर खड़ा हो सकता है ! भाभी अच्छी थी या बुरी, यह बात पूँटी अब नहीं सोचती। मगर उसके दादा को छोड़कर जाने वाली औरत के प्रति पूँटी के विद्वेष की जैसे कोई सीमा नहीं रही। उसी तरह उसी अभागिनी अपराधिनी औरत को याद करके, उसके वियोग में जो आदमी अपने को तिल-तिल नष्ट करता जा रहा है, उसके ऊपर भी उसका मन प्रसन्न नहीं हुआ।

मुँह फुलाए एक दिन सवेरे वह आई और कहा—दादा, चलो घर चलें।"

नीलांबर ने कुछ विस्मित होकर बहिन की ओर देखा क्योंकि माघ का महीना प्रयाग में बिताने की बात तय हुई थी दादा के मन का भाव समझ कर पूँटी ने कहा—"अब एक दिन भी रहना नहीं चाहती, कल ही जाऊँगी।"

उसका रुष्ट भाव देखकर नीलांबर ने विषादपूर्ण हँसी-हँसकर कहा—"क्या बात है पूँटी ?"

पूँटी अब अपने को सम्भाल नहीं सकी, रो पड़ी। भर्राई आवाज में बोली—"तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता तो रह कर क्या होगा? दिनोंदिन सूखते जा रहे हो। न, एक दिन भी मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी!"

नीलांबर ने स्नेह से हाथ पकड़कर, खींचकर पास बिठा कर कहा—"लौट चलने से ही क्या मैं अच्छा हो जाऊँगा? इस देह के ठीक होने की उम्मीद अब मुझे नहीं है, पूँटी! चल बहिन, जो होना होगा, घर पर ही होगा।"

दादा की बात सुनकर पूँटी और रो पड़ी। कहा—"हमेशा ही तुम क्यों उसकी चिन्ता किया करते हो? सोच-सोच कर ही तो तुम ऐसे हुये जा रहे हो।"

"यह किसने कहा कि मैं उसे हमेशा याद करता हूँ?"

पूँटी ने जवाब दिया—कहेगा कौन? मैं खुद ही जानती हूँ।"

नीलांबर ने कहा—"तू उसे याद नहीं करती?"

पूँटी ने आँसू पोंछ कर उद्धत भाव से कहा—"नहीं करती। उसे याद करने से पाप लगता है।"

नीलांबर चौंक पड़ा—"क्या होता है?"

"पाप लगता है। उसका नाम लेने से मुँह अपवित्र होता है, स्नान करना पड़ता है। इतना कहते-कहते उसने विस्मय से देखा कि दादा की स्नेह-कोमल दृष्टि पलभर में बदल गई।

नीलांबर ने बहन के मुँह की तरफ देखकर कड़े स्वर में कहा—"पूँटी!"

सुनकर वह डर गई और कुण्ठित हो गई। दादा की वह बड़ी लाड़ली बहन है। बचपन से आज तक हजार गलती करने पर भी उसने दादा की कभी ऐसी आँखें नहीं देखीं, ऐसी आवाज नहीं सुनी। इतनी बड़ी अवस्था में झिड़की खाकर क्षोभ और अभिमान से उसका सिर झुक गया।

और कुछ न कहकर नीलांबर वहाँ से उठ गया। पूँटी फफक-फफक कर रोने लगी। दोपहर को दादा का खाना परस कर सामने नहीं गई। तीसरे पहर खाने की सामग्री दासी के हाथ भेजकर खुद आड़ में खड़ी रही।

नीलांबर ने न तो बुलाया और न बात ही की।

शाम हो चुकी है। पूजा-पाठ समाप्त कर नीलांबर उसी आसन पर चुपचाप बैठा है। पूँटी चुपके से पीछे आई और घुठने टेक कर दादा की पीठ पर मुख रख दिया। दादा से नालिश करने का उसका यही तरीका है। बचपन में अपराध करके, भाभी से डाँट खाकर वह इसी तरह आकर फरियाद करती थी। नीलांबर को सहसा यह सब याद आ गया और उसकी पलकें भी भीग गईं। पूँटी के सिर पर हाथ रख कर उसने मधुर स्वर में कहा—"क्या है रे?"

पूँटी ने पीठ छोड़ दी और बच्चों की तरह दादा की गोद में गिरकर मुँह छिपाकर रोने लगी। उसके माथे पर एक हाथ रख कर नीलांबर चुपचाप बैठा रहा। बड़ी देर बाद पूँटी ने भर्राई आवाज में कहा—"अब कभी नहीं कहूँगी, दादा!"

नीलांबर ने हाथ से उसके बालों को इधर-उधर करते हुए कहा—"ऐसे अब कभी मत कहना।"

पूँटी चुप होकर उसी तरह पड़ी रही। उसके मन की बात समझकर नीलांबर ने मधुर स्वर में कहा—"वह तेरी बड़ी है, गुरुजन है।—केवल नाते में ही नहीं पूँटी, उसने तुम्हें माँ की तरह पालापोसा है। वह तुम्हारी मा के समान है। और कोई कुछ भी कहे मगर, तेरे मुँह से यह बात निकलना घोर अपराध है।"

पूँटी ने आंखें पोंछते-पोंछते कहा—"इस तरह वह हमें छोड़कर क्यों चली गई?"

"वह क्यों चली गई, यह केवल मैं जानता हूँ पूँटी, और जानते हैं भगवान! वह खुद भी नहीं जानती थी, उस समय वह

पागल हो गई थी। उसे जरा भी होश होता तो वह आत्महत्या ही करती, यह काम नहीं करती।"

पूँटी ने एक बार आँखें पोछकर उखड़ी हुई आवाज में कहा—"तो अब वह आती क्यों नहीं दादा ?"

"आती क्यों नहीं ? आने का उपाय नहीं है बहिन, इसी से नहीं आती।" यह कह कर अपने आपको सँभाल कर उसने क्षण भर बाद ही कहा—"अगर, उसके आने का उपाय होता तो जिस हालत मे मुझे छोड़ कर गई है, उस हालत में वह कभी रह नहीं सकती थी, अवश्य ही लौट आती। यह बात क्या तू खुद नहीं समझती पूँटी ?"

मुँह छिपाए ही पूँटी ने गर्दन हिलाकर कहा—"समझती हूँ दादा !"

नीलांबर ने भावावेश मे कहा—"यही कहो बहिन, वह आना चाहती है, मगर आ नहीं पाती। तुम सब यह नहीं देख पाते कि यह कैसी सजा है, मगर आँखें बन्द करते ही मैं देखने लगता हूँ और यह देखना ही मुझे रोज घुलाए जा रहा है।"

"हूँ।" पूँटी फिर रो पड़ी।

नीलांबर ने हाथ से अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"अपनी साध की, कामना की केवल दो बातें वह मुझसे कहा करती थी। एक यह कि आखिरी समय उसका सिर मेरी गोद में हो और दूसरी यह कि सीता-सावित्री की तरह मरने पर वह उन्हीं के पास जाय। अभागिनी की सभी साधें मिट गई।"

पूँटी चुपचाप सुनने लगी।

आँसुओं से रुंधे गले को साफ करके नीलांबर कहने लगा—"सभी उसे दोषी कहते हैं। मैं मना नहीं कर पाता, इसी से चुप रहता हूँ। मगर, बता, भगवान् को कैसे धोखा दूँ ? वह तो जानते हैं कि किसके दुख और अपराध का भार माथे पर लेकर वह डूब गई ? तू ही बतला, किस मुँह से मैं उसे दोष दूँ ? उसे आशीर्वाद

दिए बिना मैं कैसे रहूं ? संसार की नजरों में चाहे वह कितनी भी अलंकिनी क्यों न हो मगर, उसके खिलाफ मुझे कोई शिकायत नहीं। अपनी गलती से इस जन्म में उसे पाकर भी मैंने खो दिया, ईश्वर करे दूसरे जन्म में मुझे वह मिल जाय।"

इसके आगे वह कुछ न कह सका, उसका गला रुंध गया। पूंटी जल्दी से उठ कर आंचल से दादा के आंसू पोंछने लगी। और खुद भी रो पड़ी। सहसा उसे लगा जैसे दादा कहीं हटते जा रहे हैं। रोकर कहा—"जहां जी चाहे, चलो दादा, मगर एक दिन के लिए भी मैं तुम्हें अकेला नहीं छोड़ सकती, नहीं छोड़ूंगी।"

नीलांबर सिर उठा कर कुछ हंसा।

विराज जगन्नाथपुरी के रास्ते लौट रही थी। इसी रास्ते से वह अनिर्दिष्ट मृत्युशय्या की खोज में गई थी। मगर, उस जाने और इस आने में कितना अन्तर है ! अब वह अपने घर जा रही है। उसके कमजोर शरीर के थक जाने पर विश्राम की आवश्यकता पड़ती है तो उसे अपने आप पर क्रोध आता है। किसी तरह कहीं भी रुकना वह नहीं चाहती। उसकी खांसी क्षत रोग में बदल गई, और यह उसे मालूम हो गया है। इसी का उसे डर था कि कहीं ऐसा न हो कि वह वहां तक पहुंच ही न पावे। बचपन से यह बात उसके मन में घर कर गई थी कि अगर, शरीर निष्पाप न हो तो कोई अपने पति के चरणों में प्राण-त्याग नहीं कर पाती। इसी तरह मरने के लिए वह एक बार अपनी परीक्षा लेना चाहती है कि उसका प्रायश्चित पूरा हुआ कि नहीं। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जीवन के उस पार खड़ी होकर बड़ी खुशी से वह उनकी प्रतीक्षा करेगी। मगर, दामोदर नदी के इस पार पहुंचते-पहुंचते वह बिल्कुल थक गई, उसके मुंह से खून आने लगा। पैरों को आगे बढ़ाने की ताकत उसमें नहीं रह गई। हताश होकर एक पेड़ के नीचे बैठकर वह रोने लगी। यह कितना भयानक अपराध है जो इतनी कोशिश करने पर भी उसकी अन्तिम

साध पूरी नहीं हुई उसका यह जन्म तो गया और दूसरे जन्म की भी कोई आशा नही रही ! फिर भी उस पेड़ के नीचे पड़ी-पड़ी हर घड़ी वह पति के चरणो की वन्दना करती रही।

दूसरे दिन तारकेश्वर के आस-पास कही बाजार लगने का दिन था। सुबह से ही उस सड़क पर बैलगाड़ियां चलने लगीं। हिम्मत करके उसने एक बूढे गाड़ीवान से प्रार्थना की। उसका रोना देख कर बूढ़ा राजी हो गया और उसे तारकेश्वर पहुँचा गया। विराज ने सोचा, मन्दिर के पास कही पड़ी रहेगी। वहा कितने ही आदमी आते-जाते रहते हैं, शायद किसी से छोटी बहू तक खबर भेज सके।

कितने ही स्त्री-पुरुष पीड़ित होकर कितनी ही कामनाएँ लिए इस देव-मन्दिर के इधर-उधर पड़े हैं। उन्ही के बीच आकर विराज ने बहुत दिनो बाद कुछ शान्ति का अनुभव किया। वह भी पीड़ित है, उसने भी कामना की है। वह भी वहा चुपचाप पड़ी रह सकेगी, कोई उसकी ओर उत्सुकता से देखेगा नही—यही सोच कर उसे कुछ चैन मिला। मगर, मर्ज बढ़ता ही गया। माघ के उस कड़ाके की सर्दी में बिना कुछ खाए-पीए छः दिन गुजर गए। मगर अब यह उम्मीद नहीं रह गई कि और दिन गुजर सकेंगे या कोई आवेगा ही। बस, मौत का ही सहारा रह गया। उसी के लिए एक बार फिर वह अपने आप को तैयार करने लगी।

उस दिन आकाश मे बादल छाए थे। तीसरा पहर होते-होते अंधेरा-सा हो गया। सुबह मुँह से बहुत-सा खून निकल जाने के कारण उसका शरीर एकदम शिथिल हो गया था, उसने मन-ही-मन सोचा—लगता है आज ही सबकुछ खत्म हो जायगा। तभी से मन्दिर के पीछे मुँह लगाए वह पड़ी थी। दोपहर को देवता की पूजा हो चुकने पर रोज की तरह उसने उठ कर प्रणाम नही किया—मन-ही-मन प्रणाम कर लिया। इतने दिनों से वह पति के चरणों में विनती करती आ रही है।

वह अबोध नहीं है। उसने जो अपराध कर डाला है, उससे उसका इस जन्म का अधिकार तो चला गया मगर उस जन्म में फिर ऐसा न हो—यही वह चाहती है। उसने यही भिक्षा मांगी है कि अनजान में गलती कर देने की सजा उसे उस जन्म तक न भुगतनी पड़े। मगर, दिन ढलते-ढलते आज उसकी विचार-धारा सहसा बदल गई। अब भिक्षा का भाव नहीं रहा बल्कि विद्रोह का भाव दिखलाई पड़ा। उसके सम्पूर्ण मन में एक अपूर्व अभिमान का स्वर गूंज उठा। उसी में मग्न होकर वह मन-ही-मन कहने लगी—"तो फिर तुमने क्यों कहा था?"

उसे मालूम नहीं हुआ कि कब उसका बांया अशक्त हाथ गिर कर परिक्रमा की राह में पड़ गया था। सहसा उसी हाथ पर कोई कठिन पीड़ा महसूस कर वह दयनीय स्वर में कराह उठी—"आह!" जिस आदमी का अनजाने में उस पर पैर पड़ गया था वह घूम कर खड़ा हो गया और कहा—"हाय-हाय, कौन इस तरह रास्ते में पड़ा हुआ है। मुझसे बड़ा अन्याय हो गया। अधिक चोट तो नहीं लगी?"

विराज ने तुरन्त मुंह से कपड़ा हटाकर देखा और एक अस्फुट शब्द करके रह गई। यह आदमी और कोई नहीं नीलांबर था। एक बार झुककर देखने के बाद वह हट गया।

थोड़ी देर में सूरज डूब गया। पश्चिम आकाश में बादल नहीं थे। दिगन्त-मण्डल से निकली हुई सूर्य की सुनहली आभा मन्दिर के कलश और पेड़ की चोटी पर फैल गई थी। नीलांबर ने दूर खड़े होकर पूंटी से कहा—"बहिन वह बीमार औरत मुझसे कुचल गई। देख तो, अगर उसे कुछ दे सके। मालूम होता है कोई भिखारिन है।"

पूंटी ने देखा, वह भी एकटक उन्हीं की ओर देख रही थी। पूंटी धीरे-से उसके पास जाकर खड़ी हो गई। उसके मुख का कुछ हिस्सा कपड़े से ढंका था, तो भी उसे लगा जैसे चेहरा उसने कभी देखा है। पूछा—"क्यों जी, तुम्हारा घर कहां है?"

"सप्तग्राम में।" कहकर वह हँस पड़ी।

विराज की सबसे सुन्दर चीज थी—उसके मुँह की हँसी। एक बार देख लेने पर कोई भी इस हँसी को नहीं भूल सकता था।

"अरे, यह तो भाभी है।" कहकर पूँटी उस जीर्ण-शीर्ण देह पर औंधी पड़ कर, उसके मुँह पर मुँह रखकर रो पड़ी।

दूर खड़ा-खड़ा नीलांबर देख रहा था। बातचीत न सुनकर भी वह समझ गया। एक बार सिर से पाँव तक विराज को देखकर कहा—"यहाँ मत रो पूँटी, उठ।" यह कहकर बहिन को हटा कर, जीर्ण-शीर्ण उस स्त्री को एक छोटे बच्चे की तरह छाती से लगाकर वह अपने डेरे की ओर चल पड़ा।

× × ×

दवादारू के लिए, किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाने के लिए विराज से बहुत-कुछ कहा गया परन्तु, किसी तरह भी उसे राजी नहीं किया जा सका। घर छोड़कर जाने को किसी तरह भी वह तैयार नहीं हुई।

नीलांबर ने पूँटी को आड़ मे बुलाकर कहा—"उसे कितने दिन जीना है बहिन, जैसे भी वह चाहे, उसे रहने दें। तंग मत कर।"

तारकेश्वर में पति की गोद में सिर रखकर उसने यही निवेदन किया था कि उसे घर ले चलो और उसको अपनी चारपाई पर सुलादो। घर के ऊपर, घर की हर चीज के ऊपर और पति के ऊपर उसकी उत्कट पिपासा को देखकर लोग रो पड़ते। दिन-रात विराज बुखार मे बेहोश रहती है, मगर, थोड़ा-सा होश होते ही घर की हर एक चीज को गौर से देखा करती है।

नीलांबर उसकी चारपाई छोड़कर कहीं नहीं जाता और आँखों में आँसू भरकर ईश्वर से यही प्रार्थना किया करता कि तुमने बहुत स

दी, अब क्षमा करो। जो परलोक की तैयारी कर चुका है, उसके इस लोक के माया-मोह का बन्धन काट दो।

गृहत्यागिनी का गृह के ऊपर यह उत्कट आकर्षण देखकर नीलांबर मन-ही-मन बेचैन हो उठता है। दो हफ्ते गुजर गए। कल से घोर विकार के लक्षण नजर आ रहे हैं। आज दिनभर प्रणाम करके दो घण्टे पहले वह सो गई थी। शाम के बाद उसकी आँखें खुलीं। पूँटी रोते-रोते उसके पैरों के पास सो गई थी। छोटी बहू सिरहाने बैठी थी। उसे देखकर विराज ने कहा—"छोटी बहू हो?"

छोटी बहू ने उसके मुँह पर झुककर कहा—"हाँ, जीजी, मैं हूँ मोहनी।"

"पूँटी कहाँ है?"

छोटी बहू ने हाथ से दिखाकर कहा—"तुम्हारे पैरों के पास सो रही है।"

"वे कहाँ हैं?"

छोटी बहू ने कहा—"उस ओर संध्या-पूजा कर रहे हैं।"

"तो मैं भी करूँ" कहकर आँखें बन्दकर मन-ही-मन वह भी जप करने लगी। बड़ी देर बाद दाहिना हाथ माथे से छुआकर प्रणाम किया। इसके बाद क्षणभर छोटी बहू की ओर चुपचाप देखती रहने के बाद उसने धीरे-धीरे कहा—"मालूम होता है, आज ही मुझे जाना है, बहिन! मगर मेरी कामना है कि दूसरे जन्म में फिर तुम्हें पाऊँ।"

कल ही से लोगों को मालूम हो गया था कि विराज का अन्तिम समय आ गया है। इस समय उसकी बात सुनकर छोटी बहू चुपचाप रोने लगी।

विराज अब खूब होश में है। गले को कुछ और धीमा करके उसने एक बार चुपके-से कहा—"छोटी बहू, सुन्दरी को एक बार बुलवा सकती हो?"

छोटी बहू ने रुँधी साँस मे कहा—"अब उसे क्यों बुला रही हो, जीजी ! वह नही आएगी !"

विराज ने कहा—"आएगी रे, एक बार बुलवा भेजो, आएगी। मैं उसे क्षमा करके आशीर्वाद देती जाऊँ। अब मुझे किसी पर क्रोध नहीं है, क्षोभ नही है। भगवान् ने मुझे क्षमा कर मेरे पति को लौटा दिया है तब मैं भी सबको क्षमा कर जाना चाहती हूँ।"

छोटी बहू ने रोते-रोते कहा—"भगवान् की यह क्षमा कैसी है, जीजी ? बिना अपराध के तुम्हें इतनी सजा देकर भी उनकी इच्छा पूरी नही हुई, वे तुम्हें उठा ले जाना चाहते हैं। एक हाथ लेकर भी तुम्हें अगर, हम लोगों के साथ छोड़ देते... ।"

विराज हँस पड़ी। कहा—"मुझे लेकर तुम क्या करोगी बहिन ! गाँव-नगर में मेरी बदनामी हो गई है—मेरे जिन्दा रहने से क्या लाभ है, बहिन ?"

छोटी बहू ने जोर देते हुए कहा—"लाभ है जीजी ! फिर तुम्हारी बदनामी तो झूठ-मूठ की हुई है—उससे हम नहीं डरते।"

विराज ने कहा—"तुम लोग नही डरते किन्तु मैं तो डरती हूँ। बदनामी बिल्कुल सच है। मेरा अपराध चाहे कितना ही कम क्यों न हो छोटी बहू, मगर, इसके बाद हिन्दू के घर की स्त्री का जिन्दा रहना ठीक नहीं। तुम कहती हो, भगवान् की दया नहीं है, परन्तु... ।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही पूँटी रोती हुई चिल्ला पड़ी—"ओह, भगवान् की बड़ी दया है !"

अब तक वह रोती हुई सुन रही थी। उससे बर्दाश्त नहीं हो सका तो इस तरह चिल्ला पड़ी। फिर रोते-रोते कहा—"उसे जरा भी दया नहीं है, विचार नहीं है। असल पापी को कुछ नहीं हुआ और हमें इस तरह सजा दे रहे हैं।"

उसका रोना देखकर विराज चुपचाप हँस पड़ी। कैसी मधुर थी वह हँसी, कैसी हृदय-विदारक! इसके बाद उसने बनावटी गुस्से की आवाज में कहा—"चिल्ला मत कलमुँही, चुप रह!"

पुँटी झट से गले से लिपट गई और जोर से रो पड़ी—"तुम मरो मत भाभी, हम बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। तुम दवा खाओ और कहीं चलो—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ भाभी, तुम कुछ दिन और जीओ।"

पुँटी के रोने की आवाज सुनकर पूजा छोड़कर नीलांबर दौड़ा आया, सुनने लगा। पुँटी छटपटाकर लगातार उससे जिन्दा रहने की विनती करने लगी।

अबकी विराज की आँखों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें बह चलीं। छोटी बहू ने सँभालकर उसके आँसू पोंछ दिए और पुँटी को खींचकर अलग कर दिया। पुँटी छोटी बहू की छाती में सिर छिपाकर सबको सुनाती हुई फफक-फफककर रोने लगी।

बड़ी देर बाद उखड़े हुए गले से विराज बार-बार कहने लगी—"रो मत, पुँटी, सुन।"

नीलांबर आड़ में खड़ा होकर सुनने लगा। वह समझ गया कि विराज का सम्पूर्ण चैतन्य लौट आया है।

विराज कहने लगी—"बिना समझे-बूझे उन्हें दोष मत दे पुँटी! उनका कैसा सूक्ष्म विचार है फिर भी वे कितने दयावान् हैं, इस बात को आज मैं ही जानती हूँ, मेरे न रहने पर ही तुम लोग यह समझोगी कि मेरा मरना ही, मेरा जीना है! और तू कहती है कि एक हाथ और एक आँख उन्होंने लिया है तो दो दिन बाद ही शरीर का अन्त होगा। मगर, यह तुम कैसे भूल जाती हो पुँटी, कि इतनी ही सजा देकर उन्होंने मुझे तुम लोगों की गोद में लौटा दिया है, पुँटी?"

"खाक लौटा दिया है।" कहकर पुँटी रोती ही रही।

भगवान् की दया के सूक्ष्म विचार पर उसे तनिक भी विश्वास नहीं हुआ, बल्कि यह सब उसे घोर अत्याचार और अविचार ही जान पड़ा। कुछ देर बाद विराज ने कहा—"उन्हें बड़ी देर से नहीं देखा पूँटी, जरा एक बार अपने दादा को तो बुला दे।"

नीलांबर आड में ही खड़ा था। उसके पास आते ही छोटी बहू चारपाई छोड़कर उठ खड़ी हुई। नीलांबर सिरहाने बैठ गया और दाहिना हाथ सावधानी से अपने हाथ में लेकर नाड़ी देखने लगा। हाँ, सचमुच ही विराज मे अब कुछ रह नहीं गया था। नीलांबर ने पहले ही यह अनुमान कर लिया था कि बुखार के वेग मे ही वह इतनी बातें करती जा रही है और उसके बाद ही सम्भव है कि वह समाप्त हो जाय। इस समय भी नाड़ी देखकर उसने यही समझा।

विराज ने कहा—"खूब हाथ देखो।"

सहसा यह मर्मभेदी परिहास कर उठी। सबको यह बात याद आ गई कि इसी बात को लेकर इतना अनर्थ हुआ है। दुख से नीलांबर का चेहरा उदास हो गया। शायद, विराज ने यह भी देख लिया। उसने अफसोस करते हुए तुरन्त ही कहा—"न, न, यह मैंने नहीं कहा। सच कहती हूँ, अब कितनी देर है!"

यह कहकर कोशिश करके उसने अपना सिर पति की गोद में रख दिया। फिर कहा—"सबके सामने एक बार और कह दो कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया!"

"किया", भर्राई आवाज में कहकर नीलांबर ने अपनी आँखें पोंछ लीं।

आँखें मूँदे विराज क्षणभर पड़ी रही। फिर धीरे-धीरे कहने लगी "इतने दिनों तक तुम्हारी गृहस्थी सँभालने मे जाने-अनजाने मैंने कितनी ही गलतियाँ की हैं—छोटी बहू, तुम भी सुनो—पूँटी तुम भी सुनो—

तुम सभी सब कुछ भूलकर आज मुझे क्षमा करो। मैं जाती हूँ—कहकर हाथ बढ़ा कर वह पति का चरण खोजने लगी। सिरहाने का तकिया हटाकर नीलांबर ने पैर ऊपर उठा दिया। बार-बार उसकी पदधूलि माथे से लगाकर विराज ने कहा—"इतने दिन बाद मेरा सब दुख सार्थक हुआ। और कुछ नहीं है। मेरी देह शुद्ध है, निष्पाप है। अब चलती हूँ, जाकर राह देखती रहूँगी।"

कहकर करवट बदलकर उसने पति की गोद में अपना मुँह छिपा लिया और कहा—"इसी तरह मुझे लिए रहो, कहीं जाना मत।" इतना कहकर वह चुप हो रही। वह बिल्कुल थक गई थी।

सभी उदास मुँह लिए बैठे रहे। रात के बारह बजे के बाद वह फिर प्रलाप करने लगी। नदी में कूद जाने की बात—अस्पताल की बात—निरुद्देश्य यात्रा की बात—यह सब बकती रही। मगर, उन सब बातों में अति उत्कट एकाग्र पति-प्रेम था। केवल यही वह बकती रही कि घड़ीभर के भ्रम ने किस तरह उस सती-साध्वी को जलाया—पीड़ा पहुँचाई।

इन कई दिनों से नीलांबर को विराज के सामने ही बैठ कर भोजन करना पड़ता था। बीच-बीच में उस दिन छोटी बहू और पूँटी को पुकार कर वह बकने लगी। सवेरे के समय पुकारना बन्द हो गया और उल्टी साँस चलने लगी। फिर उसने किसी की ओर नहीं देखा, किसी से कुछ नहीं कहा। पति की गोद में सिर रख कर सूर्योदय के साथ दुखिया के सारे दुखों का अन्त हो गया।